द्वितीय अध्याय

मोहन राकेश के नाटकों का सर्वेक्षण

द्वितीय अध्याय
मोहन राकेश के नाटकों का सर्वेक्षण

२.१ मोहन राकेश : व्यक्तित्व :-

डॉ. चंदूलाल दुबे कहते हैं - 'हिंदी के साठोत्तरी नाटकों को नई दिशा देनेवालों में मोहन राकेश एक सशक्त हस्ताक्षर हैं।'

इस सशक्त हस्ताक्षर की हर कृति में नया प्रयोग है, विधा चाहे कोई भी हो। लेकिन नाटकों को लेकर उन्हें अनेक संबोधन प्रशंसा के रूप में मिले है। उनके एक दोस्त ने उन्हें 'साहित्य का सुल्ताना डाकू' कहा था। विश्वंभर सुरेका ने उन्हें साहित्य का 'बुलडॉग' कहा है तो उनके अभिन्न हृदय मित्र कमलेश्वर के अनुसार राकेश जैसा आदमी दुनिया के पर्दे पर नहीं है। कुछ और लेखकों में जयदेव तनेजा उन्हें 'अनूठा विद्रोही' संबोधित करते हैं तो गोविंद चातक 'आधुनिक नाटक का मसीहा' पुकारते हैं। सारांश में कहना होगा कि राकेशजी को इतने नाम मिले हैं तो कहना यही पड़ेगा कि ऐसा खुद्दार, विद्रोही, विचित्र व्यक्तित्व का निर्माण क्यों हुआ, कौनसी वह परिस्थितियाँ हैं जो उनके समय में घट चुकी हैं। कहा भी जाता रहा है कि हर बड़े व्यक्तित्व निर्माण के पीछे उसकी परिस्थितियाँ होती हैं। और ऐसे व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन और व्यक्तित्व प्रवादमुक्त नहीं होता। अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। मोहन राकेश के बारे में क्या यही हुआ ? बात दिलचस्प भी है, इसीलिए उनके व्यक्तित्व के बारे में चर्चा आवश्यक सी लगती है। विश्वनाथ दीक्षित 'बदक' इनके बारे में कहते हैं कि - ''मोहन राकेश के संबंध में कुछ भी कहना खतरे से खाली नहीं है । व्यक्तिपूजा - प्रवृत्ति प्रधान इस देश में किसी का भी सही मूल्यांकन संभव नहीं। न साहित्य, न साहित्यकार का।''[१] और मोहन राकेशजी के बारे में विविध मतों का जैसे सिलसिला चल रहा है और चलता रहेगा। और ठीक भी तो है अगर किसी व्यक्तित्व का मूल्यांकन हर अलग व्यक्ति करेगा, प्रत्येक व्यक्ति का मंतव्य अलग होगा। लेकिन सबका कहना यही है कि उनकी निजी जिंदगी जो कुछ भी हो परंतु साहित्य उच्च कोटि का है। और कुछ कहते हैं राकेश ने अपने पूरे साहित्य में अपनी जिंदगी को उभारा है। और अपवाद तो रहेंगे ही।

आधुनिक मनुष्य की संपूर्ण चेतना को व्यक्त करनेवाले मोहन राकेश हिंदी नाटक साहित्य में 'मील के पत्थर' का स्थान ग्रहण करेनवाले अद्वितीय नाटककार हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसादजी के बाद प्रमुख नाटककार की भूमिका निभानेवाले राकेशजी का वास्तविक नाम मदन मोहन गुगलानी था। आपका जन्म ८ जनवरी, १९२५ को अमृतसर में हुआ था। आपका जन्म ऐसे परिवार में हुआ जिसमें परंपरागत आदर्श थे। आपके पिता कर्मचंद गुगलानी पल्लभ संप्रदाय के वैष्णव थे। आपके पिता एक वकील होने के साथ-साथ संस्कृत साहित्य में विशेष रूचि रखते थे और योग्यता रखते थे। राकेशजी को इन्हीं से प्रेरणा मिली। लेकिन दुर्भाग्य से राकेश जब सोलह साल के थे वे तभी फरवरी सन् १९४१ को आपके पिताकी मृत्यु हुई। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। वह कितनी खराब थी, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि मकान मालिक के लड़के ने मुर्दा तभी उठने दिया जब कि उसका किराया अदा किया गया। राकेशजी का हृदय संवेदनशील था। उस आदमी से वे बहुत तकलीफ पाते थे जिन्हें वह बहुत प्यार करते थे। इसी समय उनके रिश्तेदारों से उन्हें बहुत निराशा मिली। उनके शिशु मानस में यह बात इस तरह बैठी कि वह कभी नहीं भूले।

राकेश की दादी माँ उनके लिए शरणस्थल थी। फिर भी सोलह साल की उम्र में जिंदगी ने उन्हें एक चौखटे के आकार में ढलना था। राकेश के घर के पीछे की ओर जो कंजरों के घर थे, वे घृणित और कुत्सित रहे होंगे। दादी माँ की हिदायत थी उधर जाना और देखना तो दूर कभी झाँकना तक नहीं हैं। राकेशजी के मन में यहीं से भी विद्रोह की भावना जगी होगी। क्योंकि बचपन की उम्र में यही कहा जाता है ये मत करो, वो मतकरो, यहाँ मत जाओ, वहॉमत जाओ लेकिन हमारा मन मानता नहीं और हम वहीं कर गुजरना चाहते हैं। रोकशजी तो अपने मन से जीने के कायल थे। एक तरफ दादी माँ से चिढ़ और दूसरी तरफ उनकी गोद एक ऐसा आश्रय थी जहाँ पहुँचने पर सारे भय, भ्रम और प्रश्न दूर भाग जाते थे।

राकेशजी की माँ का स्वभाव सरल था और वह धार्मिक प्रकृति की थी। उनका अपने बेटे पर अटूट विश्वास था। ''स्वयं परंपरागत संस्कारों में बँधी रहने पर भी उन्होंने कभी दूसरों की

स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न नहीं की ..... राकेश के जीवन में आसानी से देखी जा सकती है।''[२] उनका सौम्य चेहरा, तथा इनका व्यक्तित्व निष्कपट था। मोहन राकेश के दोस्त राजेंद्र पाल तो कहते हैं कि, ''मुझे उनके बेदाग सफेद साड़ी में लिपटे बेदाम सफेद व्यक्तित्व को देखकर जाने क्यों शिव के रंगा का आभास मिला था। जहर पियो और अमृत दो।''[३] शांति बाँटने का हक रखनेवाली माँ से राकेशजी बहुत प्यार करते थे।

राकेशजी का एक छोटा भाई भी रहा - वीरेंद्र- जिसे वे प्यार से वीरेन, वरील आदि पुकारते थे। राकेशजी इसे अपने बड़े पुत्र नवनीत या पुत्री परवा की तरह उसमें पुत्रत्व की ममता रखते थे। राकेशजी को एक दीदी है जिसका नाम कमला है। वह राकेशजी से डेढ़ साल बड़ी थी। वह पिताजी की दुलारी थी।

राकेशजी की शिक्षा, नौकरी एवं विवाह को लेकर कोई बात छेड़ी जाए तो उनका पूरा जीवन संघर्षमय दीखता है। ऋण-भार से ग्रस्त परिवार में भी राकेश की शिक्षा पूरी हुई। राकेश की आरंभिक शिक्षा अमृतसर में हिंदू कॉलेज में हुई और वे बाद में लाहौर के ओरियंटस कॉलेज में पढ़ने गए थे। सोलह साल की उम्र में शास्त्री की उपाधि पायी, इसी समय ही तो उन्होंने अपने पिताजी को खोया था। इसके अतिरिक्त उसके बाद उन्होंने अँग्रेजी में बी.ए.किया। ''राकेश १५ वर्ष की उम्र में ही बहुत अधिक विद्रोही हो गये थे किंतु फिर भी एक कलाकार का मन लेकर अपनी तमाम अस्थिरता और आक्रोशी वृत्ति पर काबू पाकर एम.ए. करने के लिए लाहौर चले गये। राकेश ने न केवल हिंदी में एम.ए. किया अपितु संस्कृत में भी उसी रूचि के साथ एम.ए. किया।''[४] इसी समय राकेश घुटन से मुक्तता पाने के लिए प्रकाश की तलाश में थे। अध्ययन के दौरान राकेश अपना सारा दिन दोस्तों के साथ 'बार और रेस्तराँ' में व्यतीत करते थे। इसके बावजूद ''राकेश सत्रह साल की एक लड़की के संपर्क में आए जिससे उन्हें बेहद प्यार था। उसका उन्होंना नाम रखा था दिव्या। दिव्या उनसे मिलने के लिए अमृतसर से लाहौर जाया करती थी जहाँ राकेश एम.ए. पढ़ने गए थे। राकेश भी उससे मिलने के लिए आतुर रहते थे। अपने मन की सारी बातें, सारे सपने, सारा सिनिसिज्म उसके सामने खोलकर रख

देते। मितभाषी दिव्या सब चुपचाप सुन लेती। उसका मौन ही बहुत कुछ बोल देता था। जिससे राकेश के दिल को तसल्ली मिलती थी।''[५] यह तसल्ली ज्यादा दिनों तक राकेश को नहीं मिली, क्योंकि उसी समय सन् १९४७ को देश के विभाजन की दुर्घटना और दिव्या की मौत हुई जिससे राकेश पूरी तरह टूट गये । इसके बाद जैसे ''वह बाईस साल की उम्र में ही बुजुर्ग अनुभव करने लगे थे तथा लेखन द्वारा अपने लिए एक रास्ता तलाशने लगे थे।''[६]

लेखन को लेकर उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। उन्होंने कई जगह नौकरियाँ की लेकिन कहीं टिक नहीं पाये। श्रीकांत वर्मा कहते हैं कि 'मोहन राकेश का इस्तीफा उनकी जेब में हुआ करता था।' राकेशजी ने पहली बार १९४९ में डी.ए.वी. कॉलेज, जालंधर में प्राध्यापक की नौकरी की। कुछ समय पश्चात् उन्होंने शिमला के 'बिशप काटन स्कूल' में नौकरी की। यह भी नौकरी छोड़ दी। फिर कुछ वर्षो के बाद पुन: जालंधर में डी.ए.वी. कॉलेज में हिंदी विभागाध्यक्ष का पद संभाला। लेकिन इससे भी त्यागपत्र देकर लेखन को जीवन निर्वाह का पथ बनाया। उन्होंने हिंदी कहानियों की प्रमुख पत्रिका 'सारिका' का भी संपादन किया। सन् १९७१ में फिल्म वित्त निगम के सदस्य भी बने थे। उन्होंने 'नेहरू फेलोशिप' के अधीन 'नाटक में शब्द का महत्व' पर कार्य किया जो अधूरा रहा। जालंधर, शिमला, अमृतसर, देवनगर, दिल्ली, बंबई, विश्वविद्यालय, अध्यापन, सरिता, सारिका इन सबमें वह कहीं भी बँध नहीं पाये। यही कहना होगा कि उन्होंने लेखन से समझौता नहीं किया, नौकरी छोड़ने का कारण लेखन के अतिरिक्त कुछ और भी हो।

राकेश के जिंदगी के बारे में जितना भी पढ़ा, सुना, हर वक्त यही पाया कि उन्हें घर की तलाश थी। उन्होंने सन् १९५० के दिन शीला से शादी की। लेकिन इस वक्त उनका मन जैसे तैयार नहीं था। राकेश जिंदगी में हमेशा शरीर और मन दोनों को महत्वपूर्ण मानते रहें। उनकी पत्नी में अहं बहुत था। राकेश भी ज्यादा स्वाभिमानी निकले। लोगों ने उन्हें अहंवादी कहकर घटिया आदमी की उपाधि दी और कहा कि राकेश कभी झुके नहीं स्थिति चाहे कुछ भी हो। राजेंद्र पाल कहते हैं कि, ''मैंने उन्हें झुकते देखा हैं परंतु विडंबना यह है कि वे जब भी झुके, रास्ते से भटक गये।''[७] उनकी पत्नी शीला ने

नवनीत को जन्म दिया फिर भी रिश्ते में दरार पड़ गयी। १२ अगस्त सन् १९५७ में उनका कानूनन संबंध विच्छेद हुआ। राकेशजी ने घर की तलाश में दूसरा विवाह पुष्पा से किया। अनजाने में दूसरी गलती कर गये। पुष्पा को साइकिक बीमारी थी। 'सारिका' के कार्यालय में जो उसने हंगामा किया, राकेश डर गये। दिल्ली चले गऐ लेकिन गुंडों ने राकेशजी का वहाँ तक पिछा किया। दूसरा विवाह उन्हें एक और मोड़ पर लाया। इसी समय उन्होंने 'अँधेरे बंद कमरे' का निर्माण किया जो ४५ दिनों में पूरा किया गया। इन संबंधों के बावजूद वीणा नाम की लड़की उनकी जिंदगी में आयी जो शादीशुदा थी। इन्हीं दिनों राकेश ने 'आषाद का एक दिन' का निर्माण किया। ''एक और दिव्या उनकी जिंदगी में आई थी जिसको ध्यान में रखकर ही 'आषाद का एक दिन' की मल्लिका की पात्र-सृष्टि की थी। यही थी वीणा। लगभग सन् १९५६ के आरंभ से ही वीणा राकेश के बहुत करीब आई थी। वीणा के प्रति उनका प्यार पवित्र और स्वच्छ था।[८] वीणा का पति सुरेश था और एक पुत्री को उसके जन्म दिया। वीणा में भी बचपन से राकेश के प्रति एक अपनापन था। एक साध, वह साध पूरी नहीं हो पाती । सचमुच वही मल्लिका लगती है।

समय की गति भी विचित्र होती है। वह अनजाने में ही हमारे आँचल में कुछ ड़ाल देती है। राकेश को अनीता मिल गयी और अनीता को राकेश। अनीता ने कहा था - ''मैं तुम्हारे साथ बदनाम होना चाहती थी। वह अनीता ही है जिसने राकेश को घर दिया और जैसे राकेशजी की घर की तलाश खत्म हुई। उनकी जिंदगी में दो फल खिले - पुत्री पुरवा और पुत्र शालीन। इनके लिए राकेश घर आया करते थे. लेकिन जिंदग इतनी आसान तो नहीं होती। ३ दिसंबर, १९७२ को अचानक उनकी हृदय की गति रूक गयी और नाटककार को नाटकों में नया प्रयोग करना बंद हुआ। उनकी नन्हीं पुत्री तो कहती है - ''पापा इतनी शराब न पीते तो वह न मरते।''

मोहन राकेशजी ने कुछ चार नाटक हिंदी जगत को दिये हैं और ये नाटक मानव जीवन की त्रासदियों को ही चित्रित करते हैं। ''त्रासदी अत्यंत त्रासद होती है, तभी तो त्रास-दी कहलाती है।''[९] और राकेश का संपूर्ण जीवन संघर्षमय रहा है लेकिन उनके साहित्य ने व्यक्तित्व को निखारा है। एक झिलमिलाता हीरा बना दिया है।

साहित्य समाज का प्रतिबिंब अवश्य है और साहित्यकार समाज का अंग। और आत्मानुभूति की सहज प्रवृत्ति मनुष्य में होती है। सहज कहना होगा कि साहित्य में भी व्यक्ति की भावना और उसके विचारों की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए साहित्यकार कोई भी हो, उसका व्यक्तित्व किसी न किसी अंश में साहित्य में उभरता है, तो राकेशजी इससे कैसे मुक्त हो सकते हैं। उनके व्यक्तित्व को लेकर अनेक अपवाद हैं - कितने सच हैं और कितने झूठे, अपवाद बनानेवाले ही जाने।

किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व दो प्रकारों से मिला-जुला होता है - बाह्य व्यक्तित्व और आंतरिक व्यक्तित्व। इसे शारीरिक और मानसिक संगठन कहा जा सकता है। राकेशजी का सृजन तो हैं ही उनके व्यक्तित्व से छनकर निकला हुआ। ''व्यक्तित्व व्यक्ति के जैविक अस्तित्व की समष्टि है जिसमें शारीरिक, संवेगात्मक तथा मानसिक रचना आदि का समावेश होता है। व्यक्ति का संपूर्ण अनुभव, प्रत्यक्ष ज्ञान, स्मृति, कल्पना और मूल प्रवृत्ति आदि स्थायी भाव तथा विचार व्यक्तित्व कें अंग है। रूचि, जीवन, ढाँचा, आस्था, निष्ठा व्यक्तित्व के रूप रंग हैं। यहाँ तक कि वेशभूषा, पाचन शाक्ति, कार्य-व्यापार और बोलने का क्रम व ढंग भी व्यक्तित्व का ही अंग है।''[१०] आज राकेश हमारे बीच नहीं है। लेकिन उनका व्यक्तित्व सिर्फ नाटकों में ही नहीं, पूरे साहित्य में झाँकता है। राजेंद्र पाल ने तो उनके व्यक्तित्व की जैसी व्याख्या की है - उनका व्यक्तित्व ''सतही तौर पर विसंगतियों और अंतर्विरोधों में ग्रस्त था।'' अपवाद व्यक्तित्व जे जुड़े होते हैं।

राकेश को बंधन प्रिय नहीं थे। बचपन में उन्हें स्वतंत्रता नहीं मिली इसका उन्होंने कई जगह उल्लेख किया है। घर की आर्थिक स्थिति खराब और उससे ऊपर घर में सीलन रहती थी, नालियों से बदबू आती थी, सीढ़ियाँ अँधेरी हुआ करती थी। घर में दम घुटता था। पीछे की कंजरों की बस्ती में जाना मना था। इसका परिणाम था बीमारी। पिताजी की मृत्यु , इन सबने राकेश को विद्रोही बना दिया। घर की तलाश ने उन्हें कहाँ-कहाँ भटकाया। उनका आंतरिक व्यक्तित्व संघर्ष करता रहा।

मोहन राकेश का व्यक्तित्व आकर्षक था। उनके पास एक स्वस्थ शरीर था, आकर्षक चेहरा था। उनकी आँखे किसी भी वस्तु का सूक्ष्म से सूक्ष्म निरीक्षण करनेवाली थी। गोरा रंग, कद

छोटा और घुँघराले बालोंवाले राकेश पंजाबी युवक थे। सुरमई आँखों पर चढ़ा मोटे काँच का चश्मा उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता था। उनकी वेशभूषा भी बढ़िया थी। बाईस वर्ष के इस लड़के ने बोस्की की लंबी आस्तीन की कमीज, उनी पैंट, टाई और कोट पहने हिंदी प्रोफेसर के रूप में काम किया था।

राजेंद्र पाल यह दावा नहीं करते कि वे राकेश के घनिष्ठ मित्रों में थे। लेकिन उन्होंने राकेशजी को कुछ अंतरंग क्षणों में उनकी साँसों को जिया था। पाल अपना एक अनुभव बताते हैं जब राकेश एक प्राध्यापक के रूप में थें - ''मैं हिंदी में एम.ए. कर रहा था। राकेश हमें हिंदी उपन्यास पढ़ाते थे। साहित्य के प्रति अछूता, मौलिक दृष्टिकोण, जो आलोचना की किन्ही संकुचित सीमाओं को नहीं स्वीकारता और उनका धारा प्रवाह भाषण इतनी परिमार्जित भाषा, वाक्य विन्यास इतना सुगठित, इतना सुनियोजित, कथ्य इतना नया और सार्थक, कथन इतना सशक्त, सब कुछ इतना नपा-तुला, फिर भी प्रयासरहित, उनकी कहानियों की तरह, उनके नाटकों की तरह। मैं कई बार उनकी बात न सुनकर उन्हें केवल बोलते हुए देखता रह जाता था।''[१२]

राकेश का ठहाके लगाकर हँसना तो उनके सारे मित्रों के लिए एक किस्सा बनकर रह गया था। ''उनके एक मित्र ने अपना कहानी संग्रह उनके नाम समर्पित करते हुए लिखा था - राकेश के नाम, जिसके कहकहों से मैं अक्सर डर जाता हूँ।''[१३] जब वे कुछ छुपाना चाहते थे, शायद दर्द, पीड़ा हो तब ठहाके लगाना उनका सहारा था। राजेंद्र पाल तो अपने इस मित्र के बारे में कहते हैं - ''उनके ठहाके केवल उनकी जिंदादिली का सबूत नहीं है, वे इतन ठहाकों से अपने-आपको ठगते भी हैं।''[१४]

मोहन राकेश के मित्रों में करीबी दोस्त 'कमलेश्वर' थे। ''उन्होंने हर स्थिति में राकेश का साथ दिया और उनकी हर ज्याढती और बेतरतीबी बातों को वे सहते रहें हैं किंतु प्यार के साथ, किसी विवशता के परिणामस्वरूप नहीं।''[१५] अनीता के यही राकेश जितने सीधे और सरल दिखते थे, वास्तव में थे नहीं। राकेश अनीता को 'अन्ना' कहते थे, अनीता उनके लिए महत्त्वपूर्ण थी लेकिन अनीता का स्थान तीसरे नंबर पर। पहला नंबर लेखन का, दूसरा नंबर दोस्तों का। 'रेस्तराँ' में समय

बिताने के साथ अन्य कई बातें थी जो उनका शौक बन गया था। अपने दोस्तों के प्रति ईमानदार थे, और उनकी दोस्ती को लेकर अपनी परिभाषा थी - 'सौ फीसदी देना और सौ फीसदी लेना।'

राकेश स्वाभिमानी थे। उन्होंने लेखन को लेकर कोई समझौता नहीं किया। नौकरीयों के इस्तीफे इसके प्रमाण हैं। राकेश पंजाबी युवक थे और पंजाबी उनकी मातृभाषा। संस्कृत के विद्वान के साथ अँग्रेजी के भी अच्छे अध्येता थे। किंतु अपनी अभिव्यक्ति को हिंदी साहित्य में अभिव्यक्त किया। नाटक, कहानी, उपन्यास आदि में उन्होंने जैसा हिंदी भाषा का प्रयोग किया वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। ''बटुक'' कहते हैं - ''उनका व्यक्तित्व विराधाभासों का पुंज था। मोहन राकेश बहुत ही हंसमुख थे, उनके अट्टहास आजभी मानस घाटियों में गुँजते हैं, वे बहुत ही गंभीर थे - उनका विचार जगत इसका साक्षी है। वे बहुत मिलनसार थे, उनके परिचय का क्षेत्र बहुत विशाल था। वे बहुत रिजर्व रहनेवाले व्यक्ति थे। उनके मित्रों की संख्या सीमित थी वे भारतीय भाषा और संस्कृति के पक्षधर थे।''[१६]

राकेश का व्यक्तित्व जिंदादिल था। लेकिन उनमें 'इगो' बड़ा प्रबल था। उन्होंने किसी की भी सहानुभूति स्वीकार नहीं की। अपवादों की भी परवाह नहीं की। 'राकेश घटिया आदमी हैं, दूसरी बीवी को भी छोड़ दिया।' लेकिन राकेश ने तीसरा विवाह किया। राकेश झुकना नहीं चाहते, झुकाना चाहते थे क्योंकि उन्हें आडंबरों से चिढ़ थी। फिर भी कुछ कमियाँ हर व्यक्ति में होती हैं। पूरा व्यक्ति कहीं नजर नहीं आता है। सूक्ष्म अंतर्द्रष्टा एवं तार्किक होने के बावजूद उनमें उतावलापन, अस्थिरता और निर्णय न कर पाने की कमजोरी थी। लेकिन उनकी बौध्दिक जागरूकता के सभी कायल थे। राजेंद्र पाल कहते हैं कि - ''राकेश जीनियस थे। बहुत पैनी दृष्टि रखते थे। किसी एक से एक बार मिल ले तो उसके व्यक्तित्व का ओर-छोर नापकर उसे अपनी हैसियत का अहसास कराने की क्षमता रखते थे।''[१७]

जहाँ तक उनके शौक और रूचियों का प्रश्न है, उनमें ताश खेलना, बीयर पीना, सिगरेट पीना, गली-गलियारों में घुमना, वर्षा में भीगना, किसी मामूली सी जगह पर जाकर खाना-पीना, गरीबों की जिंदगी को भीतर से देखना, रेल्वे स्टेशन, उसके प्लेटफॉर्म और सैलानी जगहों पर घूमना,

दोस्तों से गप्पे लड़ाना, कहकहे लगाना, हिसाब किताब में साफ रहना, अपने मन-पसंद का खाना-पीना और सुबह से शाम तक काम करते रहना आदि प्रमुख हैं। राकेश की जिंदगी का सबसे बड़ा शौक था - नित नये ढ़ंग से जीने की तैयारी करना।''[१८] वे विनोदी स्वभाववाले होने कारण बात-बात में फिकरे कसनें में भी माहीर थे। ''एक बार अनमने से साथ चल रहे कमलेश्वर को कहने लगे, ''यार कमलेश्वर थोड़ी देर के लिए अपना चेहरा उधार दे दो'' क्यों? कमलेश्वर ने चौंककर पूछा। ''मार खाने को जी चाहता है।'' इस पर इतने ठहाके पड़े कि सारा वातावरण घुल गया।''[१९] लेकिन साथ में गंभीर स्वभाव उनकी विशेषता भी रहो। पिताजी की मृत्यु के बाद इस किशोर के कंधों पर विधवा माँ, बहन और भाई इनकी रक्षा अबोध बालक के लिए जैसी चुनौती बन गई। शायद इतना भरकम उत्तरदायित्व न पड़ता तो संभवत: हिंदी को 'राकेश' न मिलता।

साहित्य में उनके व्यक्तित्व का प्रक्षेपण हुआ है। संघर्षमय जीवन की अभिव्यक्ति पूरे साहित्य में है। ''आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' और 'पैर तले की जमीन' का निर्माण अचानक नहीं हुआ है। उनके उपन्यास, कहानी, एकांकी उनके लेखन के दौरान की संघर्षपूर्ण जिंदगी का ब्यौरा देती हैं। जे राकेश अपने जिंदगी में हैं वही साहित्य में भी है। स्त्री-पुरूष संबंधों को लेकर अनेक नाटक, कहानियाँ उपन्यास प्रस्तुत हैं और प्रस्तुत होंगे भी, लेकिन जो स्त्री-पुरूष संबंधों की चरमसीमा राकेश के नाटकों में है, उससे आगे और क्या हो सकती है। वैसे 'व्यक्ति' मोहन राकेश का परिचय कहाँ से शुरू हो और कहाँ पर खत्म हो, इसके लिए कोई विराम नहीं। ''प्रयोग, समझौता, चुनौती, अनिवार्यता, संभवत:, आस्था वे शब्द हैं जिनके स्वीकार और अस्वीकार में मोहन राकेश का जीवन बुना गया है। 'प्रयोग' उनके निकट एक धार्मिक पवित्रता जितना महत्वपूर्ण था, 'समझौते' से उन्हें नफरत थीं, 'चुनौती' उनके लिए आकर्षण थी, 'अनिवार्यता' से उन्हें चिढ़ थी, 'संभवत:' उनका पाथेय था और 'आस्था' उनका संबल।''[२०]

फिर भी इतना कुछ है जो अन कहा है। हिंदी लेखन जो ठोंकरे खा रहा था, उसे अपने लेखन से सही पथ पर लाने का श्रेय ''सशक्त हस्ताक्षर'' मोहन राकेश को हैं। ''लेखन का श्रध्दावान

पुजारी अपनी आंतरिक आस्था के बल पर जीवन को अपनी ही शर्तों के अनुसार जीता रहा, और एक लंबी कश्मकश के बाद जीत उसकी हुई। एक शानदार जीत-जीवन में भी और लेखन में भी।''[२१] दुनिया के बीच रहकर भी यह अनूठा विद्रोही हर बात कहने के बजाए करने में विश्वास रखता था। उनका विचार-जगत् ही इसका साक्षी है। अर्थात उनके नाटक हिंदी साहित्य के लिए 'चार चाँद' बन चुके हैं।

२.२ कृतित्व :-

सुषमा अग्रवाल ठीक कहती हैं कि ''प्रत्येक युग की अपनी दृष्टि और सृष्टि होती है। सृजन यदि अपने समकालीन परिवेश से आँखें चुरा लेता है तो वह न तो जीवंत व यथार्थ बन जाता है और न उसका प्रभाव स्थायी होकर किन्ही मूल्यों को उत्प्रेरित करता है। ..... नये मूल्य निर्मित हुए हैं, पुरानों की पुनर्परीक्षा हुई हैं और परंपराओं का नवीनीकरण हुआ है। निर्माण, परिवर्तन और नवीनीकरण की इस प्रक्रिया ने न केवल जन-जीवन को, अपितु साहित्य को भी प्रभावित किया है। प्रभाव की यह लहर इतनी तीव्र गति से दौड़ी है कि उसने अपने पारंपारिक तट को लाँघकर नयी देहरी से नाता जोड़ लिया है।''[२२] मोहन राकेश ने इसी लहर को पकड़कर अपने साहित्य में दौड़ाया है वह भी सबसे पहले। सिर्फ नाटकों को यहाँ लिया जाए तो 'आधे-अधूरे' इसी लहर की परिपूर्ण गति है और उनके अन्य नवीन एकांकीयों और नाटकों का तो नया सागर बन चुका है। उनके अन्य साहित्य को देखा जाए तो व्यक्तित्व के साथ समकालीन परिवेश उभरा है। ऐसे सर्जक और शिल्पी राकेश के समूचे कृतित्व की यात्र हम यहाँ संक्षेप में करेंगे।

१. कहानी साहित्य तथा बाल कहानियाँ
२. उपन्यास साहित्य
३. यात्रा - वृत्तांत, संस्मरण, जीवन, निबंध, आलोचना, डायरी आदि।
४. कविता
५. अनुवाद

६. संपादन कार्य

७. नाटक और एकांकी

i) कहानी साहित्य तथा बाल-कहानियाँ :-

मोहन राकेश नाटककार के पहले कहानीकार के रूप में प्रसिध्द हुए। ऐसे कहानीकार जो पुरानों को नये तक पहुँचाने में समर्थ हैं। जब राकेशजी १९ वर्ष के थे तब उन्होंने 'नन्ही' नामक कहानी लिखी। उन्ही की हस्तलिपि में प्राप्त स्कूल की परीक्षाओं की लंबी कापी के कागजों पर लिखी हुई यह ७ मई, १९४५ में लाहौर में लिखी गयी थी।''[२३] १९४६ में लिखी 'भिक्षु' कहानी उनकी प्रथम प्रकाशित कहानी है।

सशक्त कहानीकार के रूप में राकेशजी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। उनके पहले छः कहानी संग्रह प्रकाशित हुए थे जिनके नाम इसप्रकार है -

१.	इंसान के खंडहर	-	१९५०
२.	नये बादल	-	१९५७
३.	जानवर और जानवर	-	१९५८
४.	पाँच लंबी कहानियाँ	-	१९६०
५.	एक और जिंदगी	-	१९६१
६.	फौलाद का आकाश	-	१९६६

उपर्युक्त कहानी संग्रह तथा बाद की प्रकाशित कहानियाँ निम्नलिखित शीर्षकों में पुनर्मुद्रित हुई

''पहचान तथा अन्य कहानियाँ''	-	१९७२
''क्वार्टर''	-	१९७२
''वारिस''	-	१९७२
''मिले जुले चेहरे''	-	१९६९

राकेश के बाद भी उनकी कुछ अप्रकाशित कहानियों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया

''आज के साये''	-	१९६७
''रोयेरेशे''	-	१९६८
''एक-एक दुनियाँ''	-	१९६८
''मोहन राकेश की श्रेष्ठ कहानियाँ''	-	
''मेरी प्रिय कहानियाँ''	-	१९७१

राकेश की कहानियों में मानव संबंधों का निरूपन हुआ है। गुजरते समय, प्रणय और परिणय, टूटा हुआ पुरूष, बिखरी हुई नारी, आदर्श, जिंदगी का कटु यथार्थ, जटिल और पेचीदा समस्याएँ, यौन-संदर्भों को लेकर वर्तमान पीढ़ी की समस्याएँ, अकेलेपन की समस्याएँ, विभाजन और पारिवारिक विघटन की समस्या और महानगरीय जीवन ये सब कहानियों में चित्रित किया है। और न जाने किस-किस विषय पर राकेश ने समस्याएँ चित्रित की है। हर कहानी अपनी अलग समस्या प्रस्तुत करती है।

''मलबे का मालिक'', ''मिस पाल'', ''उसकी रोटी'', ''परमात्मा का कुत्ता'', ''सुहागिनें'', ''एक और जिंदगी'', ''जानवर और जानवर'', ''आर्द्रा'', ''फौलाद का आकाश'', ''दोराहा'', ''एक ठहरा हुआ चाकू'', ''जख्म'' आदि राकेशजी की श्रेष्ठ कहानियाँ है। अन्य कहानियों में ''अपरिचित'', ''नये बादल'', ''सेक्स'', ''मंदी'', ''हकहलाल'', ''फटा हुआ जूता'', ''सेप्टी पिन'', ''आखिरी सामान'', ''खाली'', ''दोराहा'', ''धुंधला दीप'' आदि भी महत्वपूर्ण कहानियाँ है । और न जातने कितनी ही।

नयी कहानीकारों में कमलेश, राजेंद्र यादव, अमरकांत मार्कंडेय, दूधनाथ सिंह, भारत, भीष्म साहनी और निर्मल वर्मा के साथ राकेश का नाम भी उल्लेख्य है। ''प्रेमचंद और प्रसाद की एक बोल के रूप में जैनेंद्र और अज्ञेय के बाद आकर प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले सशक्त कहानीकार के रूप में राकेश का नाम आदर के साथ लिया जाता है। अपने समय के यथार्थ के साथ

लेखक के अपने भीगे हुए यथार्थ की अनुभूति का अत्यंत कलात्मक चित्रण राकेश की कहानियों में प्राप्त होता है।''[२४]

इसके साथ ही राकेश ने बाल मनोविज्ञान सबंधी कहानियाँ लिखी है। राकेश के मरणोपरांत सन् १९७४ में ''बिना हाड़-मांस के आदमी'' में चार कहानियों को संकलित किया है - ''काँटेदार आदमी'', ''बिना हाड़-मांस के आदमी'', ''सुनहरा मुर्गा'', ''काला बंदर और लाल अमरूद का पेड़'' तथा ''गिरगिट का सपना''। प्रतीकात्मकता के साथ सरल भाषा और शैली का प्रयोग इन कहानियों की विशेषता है।

ii) उपन्यास साहित्य :-

राकेशजी का उपन्यास साहित्य कहानियों से सशक्त और काफी आधुनिक है। अर्थात उपन्यासकार के रूप में भी उनका नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने कुल मिलाकर सात उपन्यास हिंदी साहित्य को दिये हैं। उसमें से तीन उपन्यास प्रकाशित हैं और बाकी चार अप्रकाशित।

प्रकाशित उपन्यास :

१. अंधेरे बंद कमरे - १९६१

२. न आनेवाला कल - १९६८

३. अंतराल - १९७२

अप्रकाशित उपन्यासों में ''स्याह सफेद'', ''काँपता हुआ दरिया'', ''नीली रोशनी की बाहें'' तथा ''कई एक अकेले'' आदि का समावेश हैं।

राकेशजी कहानी हो, कहानी हो या उपन्यास हो, इन सबमें आधुनिक समाज के मानवों के उलझे हुए संबंधों और समस्याओं को ही चित्रित करते हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' और 'न आनेवाला कल' आदि उपन्यासों का कथ्य विवाह और मुक्ति, बंधन और स्वातंत्र्य तथा स्वीकार और अस्वीकार के संघर्ष की भूमिकाओं को प्रस्तुत करता है। 'द्वंद्व' इनकी विशेषता है जो आज हम सबके बीच हैं। कभी न खत्म होनेवाला संघर्ष। 'न आनेवाला कल' अपने अस्तित्व का प्रतिबोधक बन गया है। इनके अन्य उपन्यासों ने भी अपने को मानव संबंधों के रूप में ही चितेरा है।

इनके उपन्यास कहानी जितने सफल नहीं है फिर भी द्वंद्व और अनिश्चय का स्वर अपने में अनोखा है जो समाज की तसवीर उभारने में सक्षम है। अर्थात जो आनेवाला कल है वह मन चाहा नहीं हो सकता है इसीलिए वह 'न आनेवाला कल' है।

iii) यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, जीवनी, निबंध, आलोचना, डायरी आदि -

''सामान्यत: राकेश को जिन तट बंधों से लगाव रहा है, वे कहानी और नाटक है।''[२५] लेकिन कलाकार जो होता है, उसकी संवेदना कहीं भी, किसी भी संदर्भ से जुड़ जाती है और वह सृजन करता चला जाता है। राकेशजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के कारण अन्य विधाओं का सृजन उनकी अपनी अनन्य विशेषता है।

वैसे तो मोहन राकेश का गद्य साहित्य अपनी विविधता में अकेला है। उसमें यात्रा-वृत्तांत की अपनी विशेषता है। ''आखिरी चट्टान तक'' और ''पतझड़ का रंगमंच'' आदि उनके यात्रा-वृत्तांत है। लेकिन प्रकाशित ''आखिरी चट्टान तक'' में राकेश ने 'गोआ से कन्याकुमारी तक' की यात्रा का वृत्तांत दिया है। गोआ, कर्नाटक, केरल के समुद्री किनारे के गाँवों, नगरों की अपनी इस यात्रा का बड़ा ही सजीव, सुंदर वर्णन किया है। लेकिन इसे यात्रा-वृत्तांत न कहकर 'यात्रा संस्मरण' कहना चाहिए क्योंकि राकेश ने इसमें यात्रा-विवरण के साथ अनेक रेखाचित्र और संस्मरण का संस्पर्श दिया है। इसीलिए उन्होंने इस पुस्तक को 'रास्ते के दोस्तों को' अर्पित की है।

मोहन राकेश का संस्मरण 'परिवेश' में संकलित है जिसे निबंध संग्रह भी कहा जाता है। स्वयं राकेश इसे 'लेख' की संज्ञा देते हैं। 'परिवेश' में आठ लेख है - १. 'अपना आप और कुछ परिचित चेहरे', २. 'यात्रापरक', ३. 'तिरछे कोण', ४. 'दायरे', ५. 'सम्मेलन, प्रश्न और परिसंवाद', ६. 'रचना दृष्टि', ७. 'समकालीन बिंदु', ८. 'एक उनींदा शहर'। 'परिवेश' में इतनी विविधता है कि उसमें से लेख निबंध भी, संस्मरण भी, कहानी भी, स्केच भी, यात्रा कथा भी और अनिबंध भी लगते हैं।

जीवनी के अंतर्गत 'समय सारथी'का उल्लेख विशिष्ट हो जाता है। इसमें लिखी जीवनियाँ विशिष्ट है क्योंकि इसमें सिर्फ व्यक्तियों का इतिहास न होकर ''एक तरह से पिछले अढ़ाई हजार वर्षों

की प्रमुख मन:स्थितियों का भी इतिहास है।''[२६] इसमें एक विशिष्ट ऐतिहासिक क्रम हैं। भारतीय मन:स्थिति और विश्व-मन:स्थिति का अध्ययन इसमें मिलता है। इस जीवनी के चार भाग किए गये हैं- 'सुदूर अतीत सालते प्रश्न' शीर्षक में गौतम बुध्द, सुकरात और अशोक, 'अंतराल... विद्रोही आस्थाएं' शीर्षक में जोन ऑफ आर्क, कबीर और मीरा, 'निकट अतीत क्रांतिकारी दृष्टियाँ' शीर्षक में स्वामी दयानंद, भगतसिंह और वॉल्टेयर तथा 'वर्तमान : सीधे साक्षात्कार' शीर्षक में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, और मार्टि ल्यूथर किंग आदि महान व्यक्तियों का उज्वल चरित्र राकेश हमें दिखाते है। सबके लिए यह प्रेरणादायी है।

राकेश की कहानी यात्रा 'बकलम खुद' में संकलित है। राकेश पहले कहानीकार हैं बाद में नाटककार। 'बकलम खुद' मरणोपरांत प्रकाशित है। इस संपूर्ण कृति मेंआये निबंधों को तीन भागों में रखा है - १. बकलम खुद, २. नयी निगाहों के सवाल, ३. कुछ और अस्वीकार। इसमें नई कहानी से संबंधित प्रश्नों, जिज्ञानाओं और समस्याओं का निर्भ्रांत विवेचन है। राकेश नई कहानी आंदोलन के अग्रणी लेखक है।

राकेश एक अच्छे आलोचक भी है। 'साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि' इसका प्रमाण है। सन १९७५ में इस ग्रंथ को प्रकाशित किया गया। 'साहित्यिक दृष्टि', 'रंगमंच और नाटक', 'प्रारंभिक समीक्षाएँ', 'सांस्कृतिक दृष्टि' तथा 'एक महत्वपूर्ण भेंट' आदि शीर्षकों में राकेश अपने विचार प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्ति की डायरी उसका अपना निजी आईना होता है। दिल खोलकर उसमें बातें होती है। सन् १९८५ में अनीता राकेशजी ने 'मोहन राकेश की डायरी' को प्रकाशित करवाया। इसमें राकेश ने अपने मंतव्य के साथ साहित्य की और सृजन-प्रक्रिया की पूर्ण भूमिका का परिचय दिया है। अन्य साहित्यकारों का साहित्य के प्रति दृष्टिकोण और उसका अपना दृष्टिकोण इसमें सम्मिलित है।

'नीली झील', 'सतजुग के लोग' आदि भी उनके लेख है। राकेश अपने अंतिम दिनों में 'रंगमंच और शब्द' शीर्षक से ही वे पुस्तक रूप में लिख रहे थे।

iv) कविता :-

राकेश ने अपना जीवन 'कविता' से ही शुरू किया था। आठ-नौ साल की उम्र में उन्होंने संस्कृत और हिंदी में कविताएँ लिखी। उनकी अनेक कविताएँ प्रकाशित भी हुई। उन्होंने अपनी प्रथम फिल्म पटकथा 'दिन ढ़ले' में अच्छे गीत लिखे हैं।

राकेश अपने गद्य में भी एक समर्थ कवि रहे हैं। राकेश ने 'मृच्छकटिक' और 'शाकुंतल' के अनुवादों में कविताओं का प्रयोग किया है। 'शकुंतला में' -

' न जाने किसके अखंड पुण्यों का
फल है उसका रूप
और न जाने
संसार में किसका भाग होगा
कि उसका वरण करें' [२७]

'उन्नीसवाँ सिगार' तथा 'चाबुक' आदि भी उनकी प्रसिध्द कविताएँ हैं। 'कंवारी धरती' शीर्षक एकांकी में विजय नामक एक पात्र के माध्यम से कही गई राकेश की बहुत सुंदर कविताएँ भी हैं। 'छतरियाँ' शीर्षक पार्श्वनाटक के 'भरतवाक्य' के रूप में भी एक अर्थपूर्ण कविता राकेश ने लिखी है।[२८]

v) अनुवाद :-

''किसी कालविशेष की रचना जब सार्वभौमिक सत्ता प्राप्त कर लेती है तब न केवल उसकी माँग बढ़ जाती है अपितु वह अन्य भाषाओं में भी रूपांतरित होने लगती है।''[२९] राकेश बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार होने के कारण उन्होंने इस कार्य को भी अच्छी तरह से निभाया। यों कहिए कि किसी कृति अनुवाद करना छुटपुट काम नहीं होता और राकेश भी यही मानते थे। कभी-कभी पैसे की जरूरत ने उन्हें इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया जो उनके लिए हितकारी साबित हुआ।

अनुवाद

१. मृच्छकटिक - शूद्रक : १९६१

२. शाकुंतल - कालिदास : १९६५

३. स्वप्नवासवदत्तम् - भास : १९७४

४. एक औरत का चेहरा : हेन्री जेम्स कृत 'दि पोर्ट्रेट ऑफ ए लेडी'।

५. उस रात के बाद : ग्रहाम ग्रीन कृत 'दि एण्ड ऑफ द अफेर'।

६. हिरोशिमा के फूल : एडिमा मॉरिस का उपन्यास 'फ्लॉवर्स ऑफ हिरोशिमा'।

अँग्रेजी उपन्यास हो या संस्कृत नाटक, या और कुछ विधा राकेश एक बेहतरीन अनुवादक साबित हुए हैं।

vi) संपादन कार्य :-

जब हम राकेश के जीवन के महत्वपूर्ण राहों को देखते हैं तो उनका संपादन कार्य भी महत्त्व रखता है। 'सारिका' कहानी मासिक पत्रिका (सन् १९६२-६३ में) एक साल के लिए संपादन किया था। राकेश एक अच्छे साहित्यकार ही नहीं बल्कि एक अच्छे संपादक भी साबित हुए हैं। उन्होंने कई भाषाओं के अनेक लेखकों को अपनी पत्रिका की ओर आकर्षिक किया। पंद्रह लेखकों के लेख संकलित कर 'आईने के सामने' पुस्तक संपादित की।

'मेरी प्रिय कहानियाँ' पुस्तक में भी राकेश ने अपनी चुनी हुई दस कहानियाँ प्रकाशित करवाई हैं। इसके साथ 'पाँच पर्दे' जिसमें अश्क, रामकुमार वर्मा, विष्णु प्रभाकर, जगदीशचंद्र माथुर तथा भुवनेश्वर के एकांकी हैं। उसकी भूमिका के रूप में एकांकी को तत्त्वोंकीजो विवेचना की है उसमें रंगमंच की दृष्टि को महत्त्व दिया है। नाटक हो या एकांकी उसका रंगमंच पर मंचित होना जरूरी मानते थे। इसी दृष्टिसे यह भूमिका महत्त्व रखती है।

vii) नाटक और एकांकी :-

राकेशजी को नाटक और एकांकी के कारण प्रसिध्दी मिली है। राकेश के जीवन काल में ही तीन नाटक प्रकाशित हुए - १) आषाढ़ का एक दिन, २) लहरों के राजहंस, ३) आधे-अधूरे। 'पैर तले की जमीन' तो उनके मरणोपरांत पूरा करके प्रकाशित किया गया।

एकांकी में उन्होंने :

१. सत्य और कल्पना : १९४९
२. अण्डे के छिल्के अन्य एकांकी तथा बीज नाटक : १९७३
३. रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक : १९७४

आदि का निर्माण करके नए-नए प्रयोगों को समाज के सामने प्रस्तुत किया।

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु और प्रसादजी एक महान नाटककार हैं। लेकिन प्रसादजी के बाद हिंदी नाट्य साहित्य के लिए रंगमंचीय स्वरूप प्रदान करना आसान काम नहीं था। लेकिन जगदीशचंद्र माथुर का 'कोणार्क', धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' और राकेशजी के 'आषाढ़ का एक दिन' ने समूचे भारत के रंगमंचीय इतिहास में तहलका मचा दिया। ''भारतेंदु का नाटकीय सीधापन और प्रसाद की प्रांजल साहित्यिक, काव्यात्मकता दोनों को आत्मसात् करके हिंदी नाटक को एक नवीन मोहक रूप राकेशने ही प्रदान किया है।''[३०] यहीं से उनका नाटककार के रूप में जन्म हुआ। और इस जन्म को उन्होंने सार्थक साबित किया, नाटकों का निर्माण करके।

'पैर तले की जमीन' का अंतिम भाग उनके मित्र कमलेश्वर ने उनके बनाये नोटस् के आधार पर पूरा किया। मनुष्य के सामने जब मौत नाचने लगती है तब उसका अपना रूप क्या रंग लाता है, इसका बेहतरीन प्रयास कहीं और नहीं मिलेगा। दो नदियों के बीच के द्विप में स्थित एक टूरिस्ट क्लब में जब बाढ़ आती है और उसमें फँसे लोग अपनी मौत को सामने पाकर न जाने क्या-क्या सोचते हैं और क्या कुछ कर गुजरने को तैयार हो जाते है। 'झुनझुनवाला', पंडित, बारमैन अब्दुला, चपरासी

नियामत, बार के ठेकेदार शफीसाहेब, मुहम्मद अयूब, सलमा, रीता दीवान, मीरा। इसमें नीरा, नियामत और अब्दुला मरना नहीं चाहते। बाकी सब पात्र एक-दूसरे पर इल्जाम लगाते-लगाते आत्महत्या करना चाहते हैं। मगर उसी समय पैर तले का पानी कम होने लगता है। संक्षेप में ''उनकी आप बीती, नृशंसता तथा क्षण-क्षण पर बदलते उनके भावों के माध्यम से राकेश ने आधुनिक समाज के प्रवंचना-पीड़ित खोखलेपन को प्रकट किया है।''[३१] यह नाटक लगभग मनुष्य के अंदर की वृत्ति तब अचानक बदल जाती है जब मौत सामने होती है और मनुष्य किसी हद तक क्या-क्या कर गुजरता है, यही दर्शाता है।

सन- १९४९ में प्रकाशित उनके एकांकियों का संकलन 'सत्य और कल्पना' में है। राकेश को छात्र जीवन में नाटक के प्रति लगाव था। वे नाटकों में भी अभिनय करते थे। ''राकेश के स्कूली दिनों में उनके नाटक के अध्यापक उन्हें बहुत पसंद करते थे, क्योंकि राकेश उन अध्यापक की तथा उनके हाव-भावों की अन्य बालकों से अच्छी तरह नकल उतारते थे। राकेश जब एम.ए. कर रहे थे - उस समय ''वेणी संहार'' संस्कृत नाटक का मंचन हुआ था जिसमें राकेश ने पद्मावती का स्त्री-पात्र निभाया था। इसलिए अगले साल सन् १९४५-४६ में राकेश से संस्कृत परिषद के लिए संस्कृत नाटक का निर्देशन करने को कहा था।''[३२] इसका मतलब हैं राकेश कहानीकर से पहले नाटककार थे लेकिन उस समय उन्होंने कहानियों को ही महत्वपूर्ण माना।

१. अंडे के छिल्के, २. सिपाही की माँ, ३. पालियाँ टूटती है, ४) बहुत बड़ा सवाल। 'अंडे के छिल्के' अन्य एकांकी तथा बीज नाटक में चार एकांकी, दो बीज नाटक तथा एक प्रसिध्द प्रयोगात्मक पार्श्वनाटक है। 'शायद' और 'हं:!' दो बीज नाटक है। 'छतरियाँ' पार्श्व नाटक है।

'रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि नाटक में राकेश की कुछ कहानियों तथा आकाशवाणी में प्रसारणार्थ तैयार किये हुए बड़े नाटकों के संक्षिप्त रूप है। 'रात बीतने तक' एक ध्वनि नाटक है जो इससे पूर्व कहानी के रूप में लिखा गया था, जिसे राकेश ने बाद में 'लहरों के राजहंस' के रूप में विस्तार दे दिया। इसमें भी सुंदरी के रूप-गर्व तथा नंद के अंतर्द्वंद्व की कहानी है। 'सुबह से पहले', 'कुँवारी

धरती', 'उसकी रोटी', 'आषाढ़ का एक दिन', 'दूध और दाँत' आदि का अन्य ध्वनि नाटकों में समावेश है। यह आकाशवाणी में प्रसारणार्थ तैयार किये गये बड़े नाटकों के संक्षिप्त रूप है।

राकेशजी ने जो कुछ भी लिखा वह उनके भावुक मन की अकृत्रिम और सहज अभिव्यंजना है। उनका मन संवेदनशील होने के कारण अनुभूति को पकड़कर अभिव्यक्त किया। निबंध, समीक्षा, संस्मरण, रेखाचित्र, एकांकी, जीवनी, डायरी, अनुवाद, कविता, नाटक आदि उनका समग्र साहित्य परिचय देता है। एक सफल गद्य और पद्य निर्माता विरला ही होता है। उनके जैसा कोई और नहीं। सचमुच यही कहना होगा कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार थे। नाट्य-साहित्य ने उनके पूरे व्यक्तित्व और कृतित्व को चार चाँद लगा दिये।

२.३ आलोच्य नाटकों का सर्वेक्षण :-

''हिंदी नाटक की विकास-यात्रा नए-नए शिखरों, दुर्गम घाटियों और घुमावदार रास्तों से होती हुई आगे बढ़ रही है।''[३३]

सचमुच हिंदी नाटक ने अपने को आगे बढ़ाने के लिए बहुत संघर्ष किया है और करता रहा है। साहित्यकार स्रष्टा होता है। जैसे-जैसे युग बदलता है साहित्यकार की विचारधारा बदलती है। हर कोई आधुनिकता का नयापन लाने की कोशिश करता है। सहज कहना होगा विधाओं के प्रतिमान बदलते रहते है। अन्य विधा की तरह नाटक के भी अपने तत्त्व है। और उसमें पाश्चात्य और भारतीय तत्त्वों का समन्वय है किंतु पुरानी लीक पर चलकर समीक्षा या सर्वेक्षण करना गलत होगा। तत्त्व वे ही है लेकिन साहित्यकार उनमें अमूल परिवर्तन कर देता है, उनका ढाँचा बदल देता है और हमें भी साहित्यकार की नजर से ही देखना होता है।

हिंदी नाटक को सक्षम बनाने में मोहन राकेशजी एक माहिर नाटककार साबित हो चुके हैं। आपके तीनों नाटक 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' इसके प्रमाण है। डॉ. गोविंद चातक तो आपको ''आधुनिक नाटक का मसीहा'' संबोधित करते हैं। आधुनिकता क्या है? इसका स्पष्टीकरण आवश्यक हो जाता है। सामान्यत: जब किसी रचना में प्राचीन का मोह

नहीं होता और नवीनता के प्रति आग्रह होता है उसे आधुनिक रचना कहा गया है, मतलब परंपरागत रूढ़ियों से हटकर जब कोई रचना युग के संदर्भ और परिवेश में की जाती है उस रचना को आधुनिक कहा जाता है। परंतु इसके अतिरिक्त बहुत सारी चीजें आधुनिक रचना के लिए आवश्यक है। केवल साहित्यिक परंपराओं का त्याग ही किसी रचना को आधुनिक नहीं बना सकता है। उसमें साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं पारिवारिक बंधनों का त्याग भी आवश्यक होता है और एकदम परंपराओं का निषेध भी नहीं किया जा सकता। सुंदरलाल कथूरिया कहते हैं - ''साहित्यकार नयी दिशाओं का अनुसंधान करता है, जो उसके जीवन संघर्ष तथा परिवेश के साथ उसके समायोजन की आकांक्षा को सम्मूर्तित करती हैं, फलत: साहित्यस्त्रष्टा को एक ओर तो परिवेश के परंपरित मूल्यों का अन्वेषण करना होता है और दूसरी ओर परिवर्तित युग-बोध के अनुसार उन्हें नया संस्कार भी देना होता है। न वह परंपरा का एकांत निषेध कर सकता है और न परिवर्तनों के विरुध्द अपनी भावभूमि का निर्माण ही। दोनों के अंतसंस्कार से ही उसकी भावभूमि निर्मित होती है।''[३८]

राकेशजी में उपर्युक्त कथन के सभी अंग मौजुद हैं। आप एक सशक्त आधुनिक नाटककार है। आलोच्य नाटकों का सर्वेक्षण करना मोहन राकेश की 'आधुनिकता' को स्पष्ट करता है।

२.३.१ ''आषाढ़ का एक दिन''

भारतीय गणतंत्र की स्थापना के बाद हिंदी नाटकों में जो कथ्य एवं शिल्प चेतना जगी, 'आषाढ़ का एक दिन' उस संपूर्ण चेतना का प्रतिनिधित्व करनेवाला एक ऐसा पहला नाटक है जिसमें एक ओर आधुनिक बोध के आयाम है और दूसरी ओर रोमांटिक भावबोध के स्तर। यह सन् १९५८ में प्रकाशित हुआ, तभी उसे लेकर अनेक वाद-विवाद हुए,उसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता को लेकर। यह नाटक कालिदास के जीवन पर आधारित तीन अंकों का नाटक है। इसकी कथावस्तु का आधार जरूर ऐतिहासिक है मगर उसे राकेशजी ने खुलकर नहीं अपनाया है। शायद राकेश इतिहास की छाया मात्र दिखाकर कुछ नया बनाने में विश्वास रखते हों। 'आषाढ़ का एक दिन' में कुछ ऐसा ही करने में आप सफल हुए हैं। राकेशजी ने 'आषाढ़ का एक दिन' के साथ-साथ 'लहरों के राजहंस' में भी

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अवश्य दी है इसीलिए आपके नाटकों को ऐतिहासिक कहकर प्रसादजी के साथ तुलना नहीं की जा सकती। यहाँ यह मानना होगा कि राकेश ने केवल ऐतिहासिक संदर्भ दिया है वह भी बिना खोज के लेकिन उसमें चरित्रों को जो द्वंद्व है, संघर्ष है, मजबुरी है, उनकी भावनाओं से ज्यादा समय जो प्रबल है और उसकी नयी आकांक्षाओं के बीच जो दुर्बलता है, वह सबकुछ नया है। उर्मिला मिश्र ने यहाँ राकेश और प्रसाद में अंतर के बारे में अपना मत प्रस्तुत किया है - ''भारतीय आदर्शों और राष्ट्रीय जीवन की हलचल प्रसाद के नाटकों में मिलती है लेकिन वह सांकेतिक बनकर रह जाती है, राकेश उन आदर्शों के प्रतिमानों के माध्यम से आज के जीवन की दुर्बलताओं और विषमताओं को अभिव्यक्त करते हैं।''[३५] चाहे कुछ भी हो, राकेशजी ने 'आषाढ़ काएक दिन' के माध्यम से हिंदी नाट्याकाश में एक क्रांति की शुरूआत की है।

कथानक

स्थान :- कालिदास का गाँव जहाँ पर्वत और जंगल झाडियाँ है। मल्लिका भी वही रहती है। एक साधारण प्रकोष्ठ मल्लिका का घर है।

कितने ही जीवंत क्षणों को उजागर करनेवाला 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक कवि कालिदास और उसकी बाल संगिनी मल्लिका के कथानक को प्रस्तुत करता है। कथानक स्पष्ट जीवंत और सरल हैं। रोमांटिक बोध के साथ आधुनिक बोध इसकी विशेषता है। इसकी कथावस्तु का संक्षेप यह है :

आषाढ़ के प्रथम दिन वर्षा में अपने सब वस्त्र भीगोकर ग्राम्यबाला मल्लिका काँपती-सिमटती सी अपने प्रकोष्ठ में प्रवेश करती है। धारासार वर्षा का आनंद लेने के बाद वह बहुत खुश है। जिसकी कोई सीमा नहीं। अत्यंत उत्साह के साथ वर्षा में भीगी प्रकृति का अद्‌भुत वर्णन करती है और माँ अंबिका को भी उसमें शामिल करना चाहती है मगर अंबिका जान-बूझकर काम में व्यस्त रहती है। किंतु उसके अंदर कहीं आक्रोश है, उदासीनता है। उसे अपनी बेटी का इस तरह कालिदास के साथ घूमना अच्छा नहीं लगता। कालिदास से उसे घृणा है क्योंकि वह आत्मसीमित व्यक्ति है और उसकी बेटी लोकनिंदा का कारण भी है। अंबिका जब विवाह का प्रस्ताव मल्लिका के सामने प्रस्तुत करती है

तो मल्लिका सहमत नहीं होती। वह अपने जीवन पर स्वयं का अधिकार माननेवाली महत्वकांक्षी लड़की है। कालिदास के प्रति उसका प्रेम पवित्र, कोमल और अनश्वर है। उसने 'भावना में भावना का वरण किया है।' अंबिका भावना को केवल छलना और आत्मप्रवंचना मानती है।

बाण से आहत हरिणशावक को लेकर कालिदास मल्लिका के घर में प्रवेश करता है। मल्लिका और कालिदास हरिणशावक का उपचार कर रहे होते हैं तभी वहाँ राज्य कर्मचारी दंतुल उसे ढूँढता हुआ वहाँ प्रवेश करता है एवं अपने शिकार की माँग करता है। दोनों में बहस होती है। लेकिन कालिदास हरिणशावक देने को प्रस्तुत नहीं है। मल्लिका के मुँह से कालिदास नाम सुनकर वह सूचना देता है कि राज्य उन्हें सम्मान देना चाहता है। इससे मल्लिका आनंदित हो उठती है। आश्चर्य उसे इस बात का है कि आचार्य वररूचि उन्हें लेने के लिए आये हैं। उसक समय माँ अंबिका की निष्ठुरता उसे असह्य लगती है। कालिदास यह सम्मान स्वीकार नहीं करना चाहता क्योंकि उसका कथन है - ''मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।'' इसी वक्त ग्राम्य युवक निक्षेप मल्लिका के पास आता है और वह जानता है कि मल्लिका ही कालिदास को समझा सकती है और जगदंबा के मंदिर में उसे जाने को कहता है। माँ का विरोध मल्लिका को रोक नहीं पाता और वह चली जाती है क्योंकि उसे वह क्षण महत्वपूर्ण जान पड़ता है। उसके जाने के बाद ग्राम पुरूष विलोम अंबिका से कालिदास के संबंध में वार्तालाप करके उसे अधिक पीड़ा पहुँचाता है। कालिदास और मल्लिका के संबंध में सुनकर अंबिका निराश होती चली जाती है तभी मल्लिका और कालिदास प्रवेश करते हैं। कालिदास और विलोम के मध्य जो वार्तालाप होता है वह किसी को प्रिय नहीं है। विलोम हर वक्त जले पर नमक छिड़कने का काम करता है। विलोम की दृष्टि में, विलोम क्या है एक असफल कालिदास और कालिदास एक सफल विलोम। विलोम के जाने के बाद कालिदास निराश होता है। उसे डर है कि वह इस भूमि से उखड़ जायेगा और वह भूमि उसे सुखा भी सकती है लेकिन मल्लिका उससे अनुरोध करती है और विश्वास दिलाती है कि वह दूर जाकर भी यहाँ से अलग नहीं हो सकेगा। वह कालिदास को विदा नहीं देती - ''नहीं ! विदा तुम्हें नहीं दूँगी। जा रहे हो, इसलिये केवल प्रार्थना करूँगी कि तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।'' कालिदास का जाना उसे भावविव्हल कर देता है। वह रो पड़ती है।

कालिदास उज्जयिनी जाकर अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना करते हैं। इसी बीच कालिदास को लेकर कई प्रवाद सुनाई पड़ते हैं, जैसे राजकुमारी प्रियंगुमंजरी के साथ विवाह, उसके बाद कश्मीर राज्य का शासक होने की। कालिदास के पीछे उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। उसकी विगत स्मृतियाँ और नवागत कृतियाँ ही मल्लिका की चिरसंगिनी बनती है। कालिदास की कीर्ति ही उसके जीवन की सार्थकता है। मेघदूत, रघुवंश, शाकुंतल, कुमारसंभव जैसी कृतियाँ मल्लिका उज्जयिनी की की ओर आने-जानेवाले व्यापारियों से खरीदकर भाव-विभोर होकर पढ़ती है। कालिदास के बारे में कुछ भी अशोभनीय कथन उसे सह्य नहीं। उसने कालिदास के लिए अपने हाथों से सादे पृष्ठों का एक बड़ा ग्रंथ सी-सीकर तैयार किया है। लेकिन उन्हीं दिनों जब कालिदास कश्मीर जाते समय ग्राम में रूकते हैं और मल्लिका से मिलते नहीं तो मल्लिका निराश हो जाती है। जिसने भावना में भावना का वरण करके कालिदास को अपनाया वही कालिदास जब उसे मिलने नहीं आता तो वह टूट जाती है। उसी बीच कालिदास की राजमहिषी प्रियंगुमंजरी मल्लिका से साक्षात्कार के लिए आती है। जड़ हुई मल्लिका किस रूप में उसका आतिथ्य करे ? प्रतीक्षा किसी और की हो रही थी और आ गया कौन? स्वाभिमानी मल्लिका प्रियंगुमंजरी के घर के परिसंस्कार के प्रस्ताव को ठुकरा देती है। लेकिन जब प्रियंगुमंजरी अनुस्वार या अनुनासिक या अन्य अधिकारी से उसका विवाह कराना चाहती है तब मल्लिका टूट-सी जाती है। आवेश में अपना ओठ काट लेती है। कालिदास की बालसंगिनी होने के कारण प्रियंगुमंजरी को उससे स्पर्धा होती है। प्रियंगुमंजरी जाने के बाद अंबिका निरंतर चिंता में घुलती जाती है और बीमार पड़ जाती है। गृहस्थी का भार अब मल्लिका पर है। अंबिका जीवन के यथार्थ स्वरूप को पुनः मल्लिका के समक्ष स्पष्ट करना चाहती है। इस अवसर पर उपस्थित होकर विलोम मल्लिका के हृदय पर और गहरी चोट करता है - 'आश्चर्य है कालिदास ने स्वयं यहाँ आना उचित नहीं समझा।' मल्लिका टूटे हुए पंखोंवाली पक्षिणी-सी तड़पती रह जाती है।

आषाढ़ के वे ही दिन फिर आते हैं। वैसी ही धारासार वर्षा होने लगती है। उसी वर्षा में भीगा बैसाखी के सहारे मातुल मल्लिका के घर में प्रवेश करता है। वह मल्लिका को राजप्रासाद के अपने अनुभव सुनाता है। उसके विचार से राजप्रासाद में रहने से अधिक कष्टकर स्थिति संसार में हो ही नहीं

सकती। वहीं उसका पाँव टूट गया है। सबका श्रध्दापात्र होने पर भी उसे वहाँ का वातावरण अच्छा नहीं लगता। इसके साथ ही वह मल्लिका को समाचार सुनाता है कि कालिदास (जो मातृगुप्त नाम से जाना जाता है) ने कश्मीर छोड़ दिया है एवं कुछ लोगों के अनुसार उसने संन्यास ले लिया है। मल्लिका यह बात सुनकर विचलित होती है। उसके मन में कई विचार आते हैं। वह अपनी बच्ची को अभाव की संतान मानती है। लेकिन कालिदास के लिए उसके मन में जो भाव था वह दूसरे का नहीं हो सका। 'परंतु अभाव के कोष्ठ में किसी दूसरे की जाने कितनी-कितनी आकृतियाँ है।' सोचते-सोचते उसकी वेदना बढ़ जाती है। इसी कश्मकश की चिंतनधारा के क्रम में क्षण-विक्षत स्थिति में कालिदास द्वार खोलकर उसके सामने आ जाता है। मल्लिका हतप्रभ हो जाती है। कालिदास ज्वराक्रांत स्थिति में यात्रा करके आये हैं किंतु आषाढ़ की वर्षा ने उसके तन के साथ मन को भी शांत कर दिया है। थकान उसे महसूस नहीं होती। मल्लिका भी उसकी हर चिंता को हर लेने की चेष्टा करती है। कालिदास भी अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण करता चला जाता है। वर्षा में भीगना उसके जीवन की महत्वकांक्षा थी। वह पिछली बार मल्लिका से नहीं मिला क्योंकि उसे ड़र था कि कहीं मल्लिका की आँखें उसके अस्थिर मन को और अस्थिर न कर दें। अब वह प्रभुता एवं सत्ता के मोह से मुक्त है। अब वह मातृगुप्त नहीं सिर्फ कालिदास है। इसी बीच कोई द्वार खटखटाता है, किंतु बंद पाकर लौटता है। कालिदास और मल्लिका के बीच वार्तालाप चलता रहता है। उसके अनुसार उस जीवन और वातावरण में रहकर उसने कुछ नहीं लिखा, '..... जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का संचय था।' 'कुमारसंभव' की पृष्ठभूमि यही हिमाल्य है और तपस्विनी उमा मल्लिका है। 'मेघदुत' के यक्ष की पीड़ा उसकी पीड़ा है और विरह-विनर्दिता यक्षिणी मल्लिका है। शकुंतला के रूप में मल्लिका ही उसके सम्मुख थी। 'रघुवंश' के अज का विलास उसका विलाप था। 'मैंने जब-जब लिखने का प्रयास किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया।' अपने सब ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ देखकर उसे अपने अभाव और बड़े प्रतीत होते हैं। उसे लगता है कि वर्षों पहले उसे लौट आना चाहिए था। मल्लिका द्वारा सिले पन्नों को देखकर कालिदास को लगता है कि वे अब कोरे नहीं है। '... इन पर एक महाकाव्य की रचना हो चुकी है ... अनंत सर्गों के एक महाकाव्य की।' कालिदास अथ से आरंभ करना चाहता है लेकिन वह जानता नहीं

कि समय अधिक शाक्तिशाली होता है, भावनाओं से भी। उसने मल्लिका को भी बहुत बदल दिया है। अंदर से बच्ची के कुनमुनाने और रोने की आवाज आती है। कालिदास हतप्रभ होकर पूछता है। मल्लिका उसके संकोचभरे सवाल का जबाब देती हुई कहती है, 'यह मेरा वर्तमान है।' मल्लिका अब अंबिका बन गई है। इसी भावभूमि में अपने प्रवेश से, अपनी मदखोर और मदमस्त भावभंगी, व्यंग्यात्मक प्रहारों तथा अंत में मल्लिका की बच्ची का चेहरा अपने से मिलाते हुए अर्थात विलोम। उसके और मल्लिका के संपर्क से बच्ची के उद्‌भव की व्याख्या कर विलोम चला जाता है। समय अधिक शक्तिशाली है क्योंकि वह प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यही समझ जाता है। बच्ची की आवाज सुनकर मल्लिका अंदर चली जाती है। कालिदास क्षणभर रूककर कोरे पृष्ठों के ग्रंथ को हाथों में लेते हुए फिर रख देते हैं और बाहर चले जाते हैं। मल्लिका देखती रह जाती है। वह विवश है। बच्ची को गोद लिए हुए और भी साथ सटाकर आवेश के साथ चूमने लगती है।

राकेश यहाँ 'आषाढ़ का एक दिन' की कथावस्तु में ''कल्पना में कल्पना का वरण''[३६] करते दिखाई देते है। तीन अंकों में विस्तारित यह नाटक है। प्रथम अंक ४५ पृष्ठों में, द्वितीय अंक ४० पृष्ठों में, तृतीय अंक २७ पृष्ठों में सिमटा हुआ है। राकेशजी ने अंकों को दृश्यों में विभाजित नहीं किया है। समय के अंतराल को दिखाने के लिए 'कुछ वर्षों के अनंतर' का संकेत दिया है, इससे संपूर्ण नाटक एक बहुत बड़े काल को घेरे हुए है। इसमें दृश्य एक ही है। मल्लिका का प्रकोष्ठ। काल के व्यतीत होने के साथ इसमें परिवर्तन दिखाया है। तीनों अंकों की घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं। 'तनाव' हर अंक में दिखाई देता है लेकिन तीसरे अंक में वह सघन और त्रासद है। कुल मिलाकर प्रस्तुत नाटक में कथावस्तु ऐतिहासिक परिवेश के अनुरूप है किंतु मल्लिका, विलोम और कालिदास आदि के चरित्र सर्जन में आधुनिक संदर्भ है।

13981
A

चरित्र-चित्रण

हर सफल कृति के लिए आवश्यक हो जाता है कि उसके तत्व औचित्य के साथ महत्वपूर्ण साबित हो और पात्र या चरित्र-चित्रण नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है। अधिक पात्रों का होना नाटक के लिए हानीकारक हैं, पात्रों की संख्या सीमित होनी चाहिए। 'आषाढ़ का एक दिन' में कुल मिलाकर बारह पात्र है - अंबिका, मल्लिका, कालिदास, विलोम, मातुल, दंतुल, निक्षेप, प्रियंगुमंजरी, अनुस्वार, अनुनासिक, रंगिनी और संगिनी।

'आषाढ़ का एक दिन' भावपरक नाटक है। मल्लिका और कालिदास प्रमुख पात्र हैं। ये दोनों पात्र असामान्य रूप से भावुक हैं। ये दोनों कथानक के केंद्रबिंदु हैं, इन्हीं पर संपूर्ण कथा आधारित है।

नाटककार ने चरित्रों के निर्माण में भावना को ज्यादा महत्व देकर तर्क से कम काम लिया है। पात्रों में समकालीनता की विशिष्टता स्पष्ट झलकती है। कालिदास, विलोम और मल्लिका ये सब पात्र यथार्थ चरित्र ही प्रतीत होते हैं। विलोम खलनायक है लेकिन आज तक की 'खलनायक' की भूमिका वह स्पष्ट नहीं करता। कुछ अलग तरह से उसका चरित्रांकन हुआ है। नाटककार की विशेषता है कि कोई भी पात्र बाह्य संघर्ष की अपेक्षा आंतरिक संघर्ष में ज्यादा पड़ा हैं।

कालिदास :

'आषाढ़ का एक दिन' का नायक है। नाटककार की नजरों में - ''कालिदास मेरे लिए व्यक्ति नहीं हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है, नाटक में वह प्रतीक उसके अंतर्द्वंद्व को संकेतित करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आंदोलित करता है। व्यक्ति कालिदास को उसमें से गुजरना पड़ा या नहीं यह गौण बात है। मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उसमें से गुजरना पड़ा है। हम आज भी उसमें से गुजर रहे हैं। हो सकता है व्यक्ति कालिदास का यह नाम भी वास्तविक न हो पर हमारी आज तक की सृजनात्मक प्रतिभा के लिए इससे अच्छा दूसरा नाम, दूसरा संकेत मुझे नहीं मिला।''[३७] संक्षेप में कतिपय संकेत सूत्र लेकर कालिदास हमारे सामने आते हैं। कृतिकार के रूप में वह प्रसिध्द है लेकिन निजी व्यक्तित्व को लेकर उसे कई लांछन भी सुनने पड़े हैं।

''वह अपनी समस्त भावुकता, द्विधा, दोलायमान वृत्ति, अनिश्चयग्रस्तता, आत्मसीमिता और संकीर्णता के बावजूद भी नाटक का नायक है।''[३८] वह नाटक का केंद्रीय पात्र है। 'सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक' इसमें नाटककार की भी स्वीकृति नीहित है।

नाटक में कालिदास का चरित्रांकन परोक्ष और प्रत्यक्ष शैली में हुआ है। 'ऋतुसंहार' के प्रणेता आगे चलकर 'मेघदूत', 'शाकुंतल', 'रघुवंश', 'कुमारसंभव' की रचना करते हैं, उनके कई नाटक रंगशालाओं में खेले जा चुके हैं। प्रकृति की क्रोड़ में पले भावुक कवि को हरिणशावकों से विशेष मोह है। मल्लिका उसकी बालसंगिनी के साथ-साथ 'उपादान' भी है ''जिसके आश्रय से वह अपने से प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है।''[३९] कालिदास यहाँ आत्मसीमित व्यक्ति है। जब वह घायल हरिणशावक ले आये तभी मल्लिका एक बात कह रही थी, कालिदास दूसरी -

मल्लिका : 'सच, माँ आज बहुत रूष्ठ है ... माँ को अपवाद की बहुत चिंता रहती है ...।'

कालिदास : 'दूध मुझे दे दो और इसे बाँहों में ले लो।'[४०]

अंबिका तो कालिदास के बारे में यहीं कहती है - ''वह व्यक्ति आत्मसीमीत है। संसार में अपने अतिरिक्त उसे और किसीसे मोह नहीं है।''[४१] कालिदास अंत में यही करता है - ''बहुधा इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अंबिका ठीक कहती थी।''[४२] कालिदास आजीवन विवाह करना नहीं चाहते थे मगर उज्जयिनी जाकर प्रियंगुमंजरी से विवाह करते हैं। कश्मीर के शासक बन हैं। लेकिन इसके पीछे उनकी मनस्थिति ही वैसी थी या परिस्थिति थी। कालिदास को ड़र था कि वह इस 'भूमि' से उखड़ जाएगें, उस 'भूमि' की अपनी अभिलाषाएँ होंगी। यही होता है, मातुल के घर में उनकी दशा, ग्राम के लोग जो उसे लांछन लगाते थे, जैसे उनसे प्रतिशोध की भावना उन्हें इस मोड़ पर लाती है।

आषाढ़ की वर्षा में भीगना उनकी महत्वाकांक्षा है। कालिदास सबकुछ छोड़कर मल्लिका के पास आते हैं। तब तक समय अधिक शक्तिशाली बनकर मल्लिका को भी बदल लेता है। कालिदास विवश होते हैं। आषाढ़ की वर्षा में कालिदास 'कोई भी' हो जाता हैं। मल्लिका के शब्दों में 'वर्षा का दिन है, कोई भी हो सकता है।'[४२]

कालिदास यहाँ आत्मसीमित, द्विधाग्रस्त, अनिश्चयात्मक स्थिति में रहकर भी प्रतिभाशाली सृजनकार बना हुआ है। यह ऐसा भावुक चरित्र है जो उसके मन में कुछ और होता है और परिस्थिति कुछ और बना देती है। यहाँ स्पष्ट है कवि हो साहित्यकार वह मनुष्य है और उसे यथार्थ जीवन से लड़ना पड़ता है। अपनी प्रतिभा को विकसित करना पड़ता है। मल्लिका को छोड़कर चला जाता है जैसे वह उस महाकाव्य के निर्माण के लिए जिसके सर्ग अनंत हो।

मल्लिका

कालिदास के जितनी ही भावुक पात्र मल्लिका है। लेकिन मल्लिका कालिदास से अधिक प्रमुख पात्र लगती है। प्रत्यक्ष रूप से कालिदास से ज्यादा मल्लिका हमारे समक्ष आती है। सब पात्र उसके चारों ओर घूमते नजर आते हैं। वह कालिदास की विवाहिता न होकर भी 'नायिका' बन जाती है। राकेशजी की अद्‌भुत पात्र कल्पना होने के साथ-साथ ''दर्शक-पाठक की समूची सहानुभूति का एकमात्र आलंबन बनती है।''[४४]

''मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रह हो'' ऐसे समर्पित वाक्य की स्वामिनी मल्लिका नाटक की प्रमुख पात्र बनने में सक्षम है। आषाढ़ के पहले दिन की धारासार वर्षा में आनंद से भीगनेवाली मल्लिका बाद में विरह में भीगती नजर आती है। मल्लिका ऐसी पात्र है जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान करके कालिदास को महान बनाने के लिए उज्जयिनी जाने पर विवश कर देती है। वह अंबिका से कहती है - ''आज जब उनका जीवन एक नयी दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उनके सामने अपने स्वार्थ का उद्‌घोष नहीं करना चाहती।''[४५] राज्य जब कालिदास को सम्मान देना चाहता है तब वह इतनी प्रसन्न होती है - ''मैं चाहती हूँ कि आज इस घर में मैं सारे संसार का आतिथ्य कर सकूं।''[४६]

मल्लिका आकर्षक ग्राम्यबाला होने के साथ-साथ बहुत भोली है। उसकी आँखे कालिदास के मन को अस्थिर कर देंगी इसीलिए कालिदास उससे नहीं मिलता। लेकिन सिर्फ मल्लिका ही वह नारी है जो सबसे पहले कालिदास के 'कवित्व' को जानती है, उसके महत्त्व को समझती है। वह कालिदास की बालसंगिनी बनकर आजीवन उसका इंतजार करती है। 'भावना में भावना का वरण' करनेवाली

मल्लिका भावना को पवित्र, कोमल और अनश्वर मानती है और हम यही देखते हैं कि इसी भावना से उसे अंत तक वितृष्णा नहीं होती। मल्लिका एक आधुनिक सजग नारी भी दिखाई देती है। जब लोग उसके बारे में कुछ भी कहते हैं तो वह झल्ला उठती है - "क्या कहते है वे ? क्या अधिकार उन्हें कुछ भी कहने का ? मल्लिका का जीवन उसकी अपनी संपत्ति है। वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार हैं?"[४७]

वह कालिदास की प्रेरणा है उसके काव्यग्रंथों की नायिका है। 'विरह-विमर्दिता यक्षिणी' है वो। लेकिन दूसरी तरफ टूटी हुई नारी है जब उसे मालूम होता है कि कालिदास ने विवाह किया है और कश्मीर का शासक बन गया है। और तो और जब प्रियंगुमंजरी उसे किसी अधिकारी से विवाह करने को प्रस्तुत करती है तो वह आवेश में अपना ओठ काट लेती है। कालिदास के संन्यास लेने की खबर सुनकर जैसे उसे अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। प्यार के लिए जो अद्‌भुत त्याग है, जो मल्लिका करती है। वह विलोम को न चाहते हुए भी स्वीकार करती है इससे और क्या विडंबना हो सकती है।

जिस कालिदास के लिए उसे वारांगना बनना पड़ा जब वह कालिदास (अथ से आरंभ करनेवाला) उसे छोड़कर चला जाता है, तो वह हमारी करूणा की पात्र बन जाती है। ऐसे लगता है जैसे प्यार में उसकी आस्था थी वह टूट जाती है।

संक्षेप में अद्‌भूत वर्षा का अनुभव करनेवाली मल्लिका फिर ऐसी वर्षा का अनुभव करती है जो उसके दिल को जलाकर रख देता है। उसका जीवन भावना का न रहकर यथार्थ का हो जाता है। ऐसा यथार्थ उसे मल्लिका रहने नहीं देता, बल्कि अंबिका बना देता है, ऐसी माँ जो बेबस है।

अंबिका :

कई-कई जीवन के उतार-चढ़ाव देखनेवाली 'अंबिका' नाटक का यथार्थ पात्र है। उसे जितना अधिक स्नेह मल्लिका से है उतनी ही अधिक वह 'अपवाद' से ड़रती है। जीवन की स्थूल आवश्यकताओं को महत्व देनेवाली अंबिका कर्म को ही जीवन मानती है। भावना उसे छलना और

आत्मप्रवंचना लगती है। वह मल्लिका से पूछती हैं - "...भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस तरह पूरी होती है।"[४८] आगे वह कहती है, "मेरी वह अवस्था बीत चुकी है जब यथार्थ से आँखें मूँदकर जिया जाता है।"[४९] अंबिका यहाँ पर उचित ही है। कालिदास से उसे घृणा है क्योंकि वह मल्लिका से सिर्फ प्रेम करता है मगर शादी की बात टाल देता है। वह कहती है "वह व्यक्ति आत्मसीमित है। संसार में अपने अतिरिक्त उसे और किसीसे मोह नहीं है।"[५०] कालिदास के ग्राम में अपने पर प्रियंगुमंजरी का उनसे मिलना, मल्लिका को साथ लेने का आग्रह, घर का परिसंस्कार अंबिका के मन को छलनी कर देता है,वह और बीमार लगती है। मल्लिका से कहती है रोषभरे स्वरों में - "लो मेघदूत की पंक्तियाँ पढ़ो। इन्हीं में न कहती थीं उसके अंतर की कोमलता साकार हो उठी है ...? आज उस कोमलता को और भी साकार रूप देख लिया।"[५१] लेकिन यह माँ अंत में 'असफल माँ' है क्योंकि मल्लिका की भावनाओं के आगे अंबिका का यथार्थ टिक नहीं पाता "उसका जीवन पीड़ा का इतिहास बनकर रह गया है।"[५२]

विलोम

सजीव, सशक्त एवं महत्वपूर्ण पात्र है जो 'खलनायक' जैसी भूमिका निभाता है। विलोम एक असफल कालिदास है कालिदास एक सफल विलोम। इसीलिए कालिदास से वह कहता है - "हम कहीं एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते हैं।" कालिदास उसका उचित वर्णन करता है - "तुम दूसरों के घर में ही नहीं उनके जीवन में भी अनाधिकार प्रवेश कर जाते हो।"[५४] "विलोम शायद मल्लिका को इतना नहीं चाहता, जितना यह चाहता है कि मल्लिका कालिदास से प्रेम न करे।"[५५] विलोम इससे साधारण जन मनोवृत्ति का प्रतीक है। वह जो अनुभव करता है वह स्पष्ट कहता है। अंत में वह मल्लिका का शरीर प्राप्त करता है लेकिन मन नहीं। वह ऐसा पात्र है जो अंबिका के अनकहे वाक्यों को मुखर रूप देता है।

प्रियंगुमंजरी

प्रियंगुमंजरी 'राजकन्या' और 'कवि-पत्नी' है। वह पतिपरायण नारी है किंतु उसके साथ ही विदुषी है। राजनीति में रूचि रखनेवाली है। अहं उसका जैसे प्रमुख दोष ही लगता है। 'यही कारण है कि उसके चरित्र में वह सहृदयता और प्रेमिलता नहीं आ-पायी है जो मल्लिका के व्यक्तित्व का अपराजेय गुण है।'[५६] एक तरफ वह कर्तव्यपूर्ति की मूर्ति नजर आती है लेकिन दूसरी तरफ उसे मल्लिका से मन-ही-मन ईर्ष्या भी है जो नारी का जन्मजात गुण माना जाता रहा है। वह स्पष्ट रूप से कहती है - ''इसीलिए तुमसे स्पर्धा होती है कि सौंदर्य का यह सहज उपभोग हमारे लिए केवल एक स्वप्न है।''[५७]

निक्षेप, मातुल दोनों ग्रामवासी है। निक्षेप कालिदास को उज्जयिनी भेजने में सहायक होता है। मातुल राज्य का उपभोग करके ग्राम वापस आता है। राज्य उसे अच्छा नहीं लगता क्योंकि वहाँ का जीवन सबसे दुखी जीवन है। दंतुल राजपुरूष है जो अधिकारों को ठीक तरह से जानता तक नहीं। अनुस्वार-अनुनासिक की नियोजना का उद्देश्य नाटक में हास्य-रस की सृष्टि करना है। रंगिनी और संगिनी के माध्यम से नाटककार शोधकार्य की उनकी वृत्ति पर तीखा व्यंग्य करते हैं। जो शोधार्थी बिना सोचे-समझे किसी भी विषय पर शोध करना चाहेंगे वह सफल नहीं होंगे क्योंकि उसके लिए शोध-दृष्टि की आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त छाज में फटकता धान, आहत हरिणशावक और आकृतियों का आगमन (राजकर्मचारी) जैसे संकेत चरित्रों के उद्घाटन में आवश्यक लगते हैं। संक्षेप में पात्रों के चरित्र उद्घाटन के लिए जो-जो था वह सब कुछ 'आषाढ़ का एक दिन' में है। हमारे लिए पात्रों की उपलब्धि मोहन राकेशजी की सर्वोत्कृष्ट देन है।

संवाद अथवा कथोपकथन

'अनिवार्यता' की शर्त इस तत्व पर लागू हो जाती है। बिना चुस्त संवाद-योजना के नाटक सफल नहीं हो सकता है और मोहन राकेशजी ने चुस्त एवं सार्थक संवाद योजना के माध्यम से कथानक में गति एवं जान ला दी है।

संवाद योजना नाटकीय है किंतु संवादों की शब्दावली कई जगह संस्कृतनिष्ठ है। इसके बावजूद भी आधुनिक संदर्भों को व्यक्त करने में सक्षम हैं। यही इनकी नवीनता है। प्रसंगानुकूल कथोपकथन के माध्यम से नाटककार ने नाटक में एक अपूर्व वातावरण उपस्थित करने में सफलता प्राप्त की है। नाटक में मल्लिका के संवादों में संवेदना, सरसता एवं प्रवाह है। मल्लिका द्वारा प्रकृति का अद्‌भुत वर्णन संपूर्ण परिस्थिति का बोध करा देता है, ''आषाढ़ का पहला दिन और ऐसी वर्षा माँ। .... ऐसी धारासार वर्षा ! दूर-दूर तक उपत्यकाएँ भीग गयी।... और मैं भी तो, देखो न माँ, कैसी भीग गयी हूँ।''[५८] मेघदूत का वर्णन ऐसा है कि, जैसे हम भी उसी वर्षा में भीग गये हो। संवादों में कविता बोलती है।

आवश्यकता से ज्यादा लंबे संवाद नाटक में बहुत कम है लेकिन परिस्थितियाँ उन्हें अनुकूल बना देती है। 'संक्षिप्त और अर्थपूर्ण संवादों की अभिव्यक्ति' नाटक की आत्मा बन चुकी है। हर वाक्य अगले वाक्य के संदर्भ में ही कहा गया है।

मल्लिका : फिर उदास हो गये ?
देखो, तुम मुझे वचन दे चुके हो।

कालिदास : तुम फिर एक बार सोचो मल्लिका। प्रश्न सम्मान और राज्याश्रय स्वीकार करने का नहीं है। उससे कहीं बड़ा प्रश्न मेरे सामने है।

मल्लिका : और वह प्रश्न मैं हूँ। ... हूँ न?''[५९]

रंगनिर्देश राकेश की आधुनिक विशेषता है। 'क्षणभर वह चुप रहता है। फिर टहलने लगता है। फिर झरोके के पास चला जाता है।' अथवा उल्मुक के निकट जाकर उसके काष्ठ का सहलाने लगता है। उल्मुक का प्रकाश उसके मुख पर पड़ता है।

नाटक के संवाद भावों के अनुरूप ढ़ले हुए है। प्रकोष्ठ, गेरू के स्वस्तिक चिहन, ताक, तल्य, कुंभ, कुशा, शर्करा, छाज में फटकता धान, घायल हरिणशावक, आस्तरण, प्रहरी आदि शब्दों को लेखक ने संवादों के वातावरण के लिए चुना है। इससे अभिनेयता में और रूचि उत्पन्न होती हैं।

रस

नाटक में पढ़ने या देखने के बाद हमारे मन-हृदय में एक प्रकार का भावोद्रेक होता है। हम उसमें समा जाते हैं। वही भाव जो पात्रों में, वह हममें जग जाता है। यही भाव 'रस' कहलाता है। वैसे तो भारतीय नाटकों की परंपरा में सुखद घटनाओं का संयोग करके श्रृंगाररस की अभिव्यक्ति होती है। लेकिन 'आषाढ़ का एक दिन' में राकेशजी परंपराओं से हटकर तथा पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर दु:खद घटनाओं की सृष्टि की है। फलस्वरूप नाटक का अंत करूण रस में हुआ है।

अभिनेयता

मोहन राकेशजी के सभी अभिनय के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर चुके हैं। इसका प्रमाण राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, अनामिका : कलकत्ता, थियेटर युनिट : मुंबई, एमेच्योर आर्टिस्टस् एसोसियेशन : जयपुर, प्रयाग रंगमंच : इलाहाबाद, और भी अनेक थियेटर, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में इसका सफल रंगमंचन हुआ है।

तीन अंकों में विभाजित यह नाटक है। विभाजन समय के आधार पर किया है। संक्षिप्त कथानक में रोचकता है। परदा और समय का अंतराल परिस्थिति के परिवर्तन का सूचक है। चरित्र भी कम है। रंगमंचीय सुविधा के लिए पर्याप्त रंगनिर्देश दिये हैं।

मोहन राकेश का यह अभिनव प्रयोग 'हिंदी नाटक' के विकास के लिए नई भूमि प्रदान करता है। नाटक में अनेक ध्वनिसंकेत नाटक को प्रभावी बनाते हैं।

अभिनेयता एक ऐसा अपरिहार्य तत्व है जो किसी भी कीमत पर उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक अंक की अभिनेयता की विशेषता यह है कि सामाजिक के मन में उत्सुकता जागृत करता है। इसके बाद क्या होगा ? कालिदास जायेंगे या नहीं ?कालिदास जाते हैं तो वापिस आयेंगे की नहीं ? आये भी तो चले गये? यहाँ अंत में भी उत्सुकता खत्म नहीं होती और नाटक इसी अभिनेयता में खत्म होता है।

उद्देश्य

कृतिकार की सृजनभूमि से यही अपेक्षा की जाती है वह केवल उपदेश न दे बल्कि पाठक के मानस में गूँजनेवाली अभिव्यक्ति को उद्देश्य के रूप में झलकाये और सृजनकार के मन में उद्देश्य अवश्य होता है। रचना का सृजन युग-जीवन और समाज से संबंधित है इसीलिए उद्देश्य को भी उसी दृष्टि में रखकर निर्माण करना कृतिकार की चुनौती बन जाती है।

मल्लिका के रूप में नाटककार ने भावना को महत्त्व देनेवाली लेकिन पुरूषों की नजर में भावना को ज्यादा महत्त्व नहीं। नारी यहाँ पुरूष की अहंवृत्ति की शिकार है। कालिदास और विलोम के बीच वह अंत तक मूलती नजर आती है। आज की नारीयों का प्रतीक बन गई है।

राज्याश्रय साहित्यकार की प्रतिभा को कुंठित कर देता है। लेखन की समस्या और लेखन निजी व्यक्तित्व में पीसता हुआ 'कालिदास' हमें नजर आता है। एक तरफ राज्याश्रय की सब सुविधा और दूसरी तरफ भावनाओं का स्वातंत्र्य खो देना, इनमें अंत:संघर्ष का प्रकाशन नाटककार का मूल उद्देश्य है।

शोध-कार्य में छात्राओं पर टीका-टिप्पणी करना भी एक उद्देश्य है।

स्त्री की भावना और पुरूषों की भावना में अंतर का जो विश्लेषण पूरे नाटक में दिया है वह बेजोड़ है। समय भावनाओं से ज्यादा शक्तिशाली है। स्त्री बेबस है। पुरूष रंगरलियाँ मनाता है। लेकिन दोनों का व्यक्तित्व खत्म हो जाता है। एक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य लगता हैं जैसे वह लेखक का अपना मत हो 'साहित्य और राजनीति का कार्य एक साथ नहीं हो सकता।'

नामकरण

प्राय: साहित्यिक रचनाओं का नामकरण उद्देश्य या नायक-नायिका के नाम या मुख्य घटना के आधार पर किया जाता है। नाटककार यहाँ जैसे रूढ़ियों से बचा है। नामकरण की भी नवीनता है और इसमें नाटककार सफल भी हुए हैं। 'नाटककार ने अपनी सूझबूझ से उस दिन विशेष को अपनी भावसंपदा प्रदान कर नामकरण का आधार बनाया है। जिस दिन यह घटना घटित होती है।

यह दिन विशेष भी कोई सामान्य दिन नहीं हैं। नामकरण में हृदय की भावना की गंध है, स्थितिगत कोमलता है और भावात्मक संवेदन है।'[६०] सुषमा अग्रवालजी 'आषाढ़ का एक दिन' के नामकरण की ही व्याख्या कर जाती है। आषाढ़ के प्रथम दिन जिस वातावरण में नाटक का आरंभ हुआ है उसी वातावरण में नाटक का अंत भी होता है। भावनामयी मल्लिका और कालिदास के जीवन को पूरी तरह चित्रित करने में सक्षम है। यथार्थ जीवन का प्रवाहक बनकर 'आषाढ़ की वर्षा' हमारे सामने आती है। और यही वर्षा 'आषाढ़ का एक दिन' नामकरण बनकर अपने को सार्थक साबित करती है।

आधुनिकता

आधुनिक साहित्य की यह विशेषता बन गयी हैं कि उसमें 'चौंका देनेवाली' बातों और चुनौतियों का समावेश किया जाता है। उर्मिला मिश्र आधुनिकता की यहाँ व्याख्या करती हैं - "इस युग में ऐसा साहित्य लिखा जाने लगा जो हमें हिलायें, जगाये और झकझोर दे, जो हमें उठने और चिंतन करने को बाध्य करे, जो हमारी मान्य आस्थाओं को तोड़ दे, जो हमारे दिल को दुखाये और पीड़ित करे और समय की कुंठाओं को हमारे सामने रखे।'[६१] इस तरह का साहित्य मोहन राकेशजी ने लिखकर आधुनिक होने का निर्वाह किया है।

'आषाढ़ का एक दिन' उसका ठोस रूप है। समकालीन संदर्भ और आधुनिक बोध इस नाटक की महत्त्वपूर्ण विशेषता है क्योंकि यही से जैसे पूर्ण आधुनिकता उभरकर आने लगी थी। "कला और जीवन, भावना और कर्म, प्रेम और कर्तव्य, कलाकार और राज्य, आस्था और अनास्था में होनेवाले संघर्ष का सफल चित्रण है। क्षण विशेष के महत्व की पहचान एवं पकड़ जो समसामायिक की अनिवार्य शर्त है, नाटक से स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है।"[६२] समय हमेशा शाक्तिशाली होता है मानव की भावनाओं से भी इसका यथार्थ से भी इसका यथार्थ परिचय नाटक से हमें मिलता है। आज के जीवन की विडंबना है यह। रोमांटिक बोध से ज्यादा पीड़ा-बोध है। पात्रों का अंत: संघर्ष आधुनिक जीवन का प्रतीक है। कालिदास, अंबिका और मल्लिका इसके प्रतीक बन चुके हैं। "कालिदास का संकट एक समकालीन कलाकार का संकट है और मल्लिका का संकट छायावादी है - प्रेमिल है। अत: इस कृति की समकालीनता या आधुनिकता पर कोई प्रश्न-चिहन् नहीं लगाया जा सकता है।"[६३]

मुख्य रूप से राज्याश्रय से सर्जना शक्ति का विनाश यह आधुनिक युग के साहित्यकार की समस्या लगती है। राज्याश्रय हो या अन्य कोई जगह जो सृजनकार की प्रतिभा को कुंठित कर दे यह गलत बात है। आधुनिक युग की समस्या है। इसमें नारी की समस्या भी आधुनिक है। संक्षेप में वो सभी बातें नाटक में मौजुद है जो आधुनिक होने का निर्वाह करती है।

२.३.२ लहरों के राजहंस

'आषाढ़ का एक दिन' के बाद राकेशजी का यह दूसरा नाटक है जिसमें अपने नाटकों के पात्रों के चरित्रों तथा उनके द्वंद्व को उभारने के लिए बिल्कुल भारतीय चिंतन में पगे हुए प्रतीकों का जैसा अनूठा प्रयोग राकेश ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।[६४] यह वक्तव्य कन्नडभाषी लेखक डॉ. सिध्दलिंग पट्टणशेट्टी ने दिया और ठीक ही तो कहा है । 'आषाढ़ का एक दिन' और 'आधे-अधूरे' से भी ज्यादा प्रतीकात्मकता इस नाटक में है। 'लहरों के राजहंस' राकेशजी की नाट्यकला का अप्रतीम प्रतीक है। यह नाटक पहली बार सन १९६३ में प्रकाशित हुआ। ''प्रभावशीलता और निर्वाह की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण और हिंदी नाट्यसाहित्य में एक सीमाचिन्ह के रूप में यह नाटक उल्लेखनीय है।''[६५]

च्यवनऋषि झा के शब्दों में 'इतिहास चिरकाल से साहित्य का उपजीव्य रहा है''[६६] और फिर भी राकेशजी इससे कैसे अलग रह जाते हैं। राकेश परंपरा और नवीनता का समन्वय करनेवाले साहित्य के स्त्रष्टा है। उनके नाटकों में 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' को पूर्णतः ऐतिहासिक कहना राकेशजी के साथ इन्साफ नहीं है। ''मनीषी कलाकार तो ऐतिहासिक तथ्यों को कल्पना के माधुर्य से सम्मिश्रित कर इतिहास के अस्थिपंजर सत्यम्, शिवम् और सुंदरम के विनियोजन द्वारा प्राण-प्रतिष्ठा करता है।''[६७] राकेश मनीषी कलाकार हैं और उन्होंने ऐतिहासिकता का आवरण मात्र अपनाया है। नाटककार खुद कहता है जब 'आषाढ़ का एक दिन' प्रस्तुत हुआ और ढेर सारे आक्षेप ऐतिहासिकता के बारे में लगाए गए लेकिन नाटककार यहाँ बखूबी और तथ्यपूर्ण उत्तर दे जाता है - ''साहित्य विज्ञान के समय से बँधता नहीं, समय इतिहास का विस्तार करता है; ... इस तरह साहित्य में इतिहास अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़नेवाली ऐसी

कल्पनाओं में व्यक्त होता है तो अपने ही एक नये और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है।''[६८] राकेश आगे और भी स्पष्ट रूप में कहते हैं ''प्रस्तुत नाटक का आधार भी ऐतिहासिक है, परंतु उतने ही अर्थ में जितना इस व्याख्या में आता है।''[६९] 'लहरों के राजहंस' की कथा का आधार अश्वघोष का 'सौंदरनंद'' काव्य है लेकिन राकेशजी ने नाटक में कहीं ज्यादा काल्पनिकता का आवरण भी चढ़ा दिया है। ''सौंदरनंद'' में नंद और सुंदरी के जीवन के जो तथ्य हैं, उनके जीवन के सीमित ऐतिहासिक तथ्यों से वे कहीं भिन्न है ; शोधग्रंथों के 'प्रामाणिक' तथ्य तो उनके संबंध में उपलब्ध में नहीं हैं।[७०] ''उस काव्य का अपना बिंब तरंगों पर तैरते राजहंस का है या अनिश्चिय में उठे-रूके एक पैर का। परंतु मेरे लिए वह सब धुंधला दृश्य था। स्पष्ट थे दो दीपाधार जो सौंदरनंद में नहीं थे।''[७१] एक पुरूष मूर्ति का और एक नारी मूर्ति का।

कथानक

'लहरों के राजहंस' का कथानक बहुत संक्षिप्त है। 'लहरों के राजहंस' के प्रकाशन से पहले राकेश ने इसी आधार पर 'सुंदरी' शीर्षक नामक रेडियो नाटक सन् १९४९ में लिखा, फिर सात-आठ वर्षों के बाद सन् १९५६ में इसी 'सुंदरी' रूपक का संशोधित रूप 'रात बीतने तक' का निर्माण किया। 'लहरों के राजहंस' के प्रकाशन के बाद भी इसमें परिवर्तन हुए। राकेश कहते हैं - 'अपनी जिस उलझन के कारण मैंने बार-बार इसमें परिवर्तन किये हैं, उसका ठीक-ठीक अनुमान उन्हें (दर्शक, पाठक, निर्देशक, समीक्षक) नहीं है। अस्तु। कथावस्तु हो, चरित्र-चित्रण या अन्य कोई तत्व हो नाटक का सर्वेक्षण करते समय पुरानी लीक पर चलकर पिटी-पिटाई बातों के घेरे में चलना असंगत प्रतीत होता है। इसलिए जिस तत्व को साहित्यकार ने जिस रूप में ढाला हो, उसी रूप में प्रस्तुत करना संगत होगा। तीन अंकों की कथावस्तु का दृश्य बंध सुंदरी का कक्ष है। यह नाटक गौतम बुध्द के सौतेले भाई नंद और उसकी रूपगर्विता पत्नी सुंदरी के ''ऐसे अंतर्द्वंद्व को प्रस्तुत करता है जिसका संबंध युग-युग से और जो ऐतिहासिक परिधियों में भी आधुनिक है।''[७२] ''यहाँ नंद और सुंदरी की कथा आश्रय मात्र है।''[७३] लेकिन उनका जो द्वंद्व दिखाया है वह युग-युग को संचलित करता रहेगा और सबमें

दिखाई देगा, समय कोई भी हो, परिस्थिति कोई भी हो। तीनों अंक अपने आप में सशक्त, सुगठित और भावपूर्ण है। यह कथा है, नंद और सुंदरी की। नंद का सौतेल बड़ा भाई गौतम बुध्द (सिध्दार्थ) की और उसकी पत्नी यशोधरा की।

'लहरों के राजहंस' को घटनाप्रधान नाटक न कहकर मानसिक अंतर्द्वंद्वों का नाटक कहना चाहिए। इस अर्थ में 'लहरों के राजहंस' राकेशजी का पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से कहीं आगे की चीज हैं। तीन अंकों के इस नाटक में तीन घटनाएँ ही प्रमुख हैं। प्रथम अंक में सुंदरी द्वारा कामोत्सव का आयोजन और उसकी विफलता, द्वितीय अंक में सुंदरी का कामोत्सव की विफलता से उत्पन्न कटुता और क्षोभ की मनस्थिति से उबरकर पुन: सामान्य स्थिति में लौटने की कोशिश और उसी वक्त बुध्द का भिक्षा हेतु वापस आना और शिक्षा पाये बिना वापस लौटने से नंद का संकुचित और लज्जित होना। उसी परिमार्जन हेतु बुध्द से मिलने जाना, तृतीय अंक में बुध्द द्वारा जबरदस्ती दीक्षित कर दिये नंद का वापस घर लौटना और सुंदरी द्वारा उसका तिरस्कार होने के कारण नंद का पुन: वापस लौट जाना। ये तीनों घटनाएँ 'आषाढ़ का एक दिन' की तरह दर्शकों और पाठकों को एक गहरे मानसिक अवसाद की स्थिति में पहुँचाती है।

प्रथम अंक से ही नाटक की मूल भावना, समस्या और लक्ष्य का संकेत मिलता है। प्रथम अंक का दृश्य जब खुलता है तो हम देखते हैं कि सुंदरी के राजभवन के कर्मचारी अपने-अपने काम में व्यस्त भाव से जुटे हैं। नागदास, नीहारिका, शेफालिका, बीजगुप्त और मंदारक आदि कर्मचारी प्रधान कर्मचारी श्वेतांग के आदेश से अपने काम में व्यस्त हैं। बातें करती हुई सुंदरी अलका के साथ मंच पर आती है तो मालूम होता है कि यहाँ किसी बड़े कामोत्सव का आयोजन हो रहा है। यशोधरा अगली सुबह बौध्द धर्म में दीक्षित होंगी और इसी रात सुंदरी के राजभवन में कामोत्सव, यह बात श्यामांग को ही नहीं हर एक को अटपटी लगती है लेकिन कहता कोई नहीं। सुंदरी अलका से बात करती हुई अपने पक्ष में कहती हैं - यशोधरा में वह आकर्षणशक्ति नहीं थी जिससे वह सिध्दार्थ को बाँधकर रख सकती थी। जैसे उसने नंद को स्वयं मे बाँध रखा है। बुध्द के प्रभाव का वह इस तरह जवाब देती है कि जीवन

की एकरसता से ऊबे लोग बुध्द की बातों में नयापन पाते हैं, इसीलिए उसे घेरे हैं। अपने और यशोधरा के अंतर को स्पष्ट करती है -''नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाना है, तो उसका आकर्षण उसे गौतम बुध्द बना देता है।''[७४] इसी समय राजभवन के निकट के जलाशय में हंसों का कूजन और पंखों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ती है। इन हंसों से यह संकेत देती हुई सुंदरी कहती है कि नंद और उस पर बुध्द का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसी बीच श्यामांग जलाशय में पत्थर फेंकना हैं। श्यामांग के पत्थरों की चोट से हंस घायल होकर उड़ जाते हैं इसलिए सुंदरी क्रुध्द हैं। लेकिन श्यामांग ने एक मायाविनी काली छाया को पत्थर मारे और हंस घायल हुए। सुंदरी उसे अंधकूप में डाले जाने का आदेश देती है, मगर अलका उससे प्रेमकरती है और वह (श्यामांग) भी विक्षिप्तसा हो गया है, उसका दंड क्षमा कर देती है। सुंदरी अतिथियों के स्वागत के इंतजाम में व्यस्त रहती है तभी नंद आखेट से वापस आता है। वह मृत मृग को जंगल में छोड़कर आता है। बातो-बातों में नंद यही बात खोलने की कोशिश करते हैं कि शायद आज कोई अतिथि नहीं आयेगा। नंद का अभिन्न मित्र आर्य मैत्रेय बाद में आता है और जाता है। सभी लोग देवी यशोधरा को मिलने जाने वाले है। यशोधरा के टक्कर में यही कामोत्सव विफल हो गया। सुंदरी की यह सीधी पराजय थी। एक भी आमंत्रित का उत्सव में न आना, यशोधरा के समक्ष सुंदरी को छोटा बना देता है। सारा आक्रोश उबलकर नंद की ओर केंद्रित हो जाता है। वह नंद की कोई बात सुनती नहीं। 'ठहरों सुंदरी ! बात तो सुनो ... । नहीं सुनोगी तुम कभी नहीं सुनोगी।'[७५]

एक दूसरे से असीम प्रेम करनेवाले एक दूसरे के मन की बात समझ नहीं पाते। अपरिचय और अलगाव यहीं से पैदा होता है।

रात उभरने के समय में घटित प्रथम अंक के बाद क्षणिक अंतराल है जिसमें कुछ समय बीतने का संकेत मिलता है। दृश्य जब खुलता है तो उसी रात्रि के अंतिम प्रहर में सुंदरी झूले पर अस्तव्यस्त सोयी हुई है और नंद अस्थित चित्त से कमरे में इधर से उधर टहलता है। श्यामांग के प्रलाप का स्वर बीच-बीच में उभरकर सामने आने लगता है जैसे नंद की मनस्थिति को उजागर कर रहा है। सुंदरी की नींद टूटती है और यह पाती है कि नंद रातभर सोये नहीं। वह जानती है कि नंद रातभर कुछ

सोचते रहे होंगे। अपने को सामान्य बनाने की कोशिश करती हुई नंद से माफी माँगती है। नंद प्रफुल्लित होता है। सुंदरी के प्रसाधन करने में सहायक होता है। दर्पण हाथ में थामे खड़ा होता है तभी 'बुध्द शरणं गच्छामि' का समवेत स्वर नंद को हिला देता है। फिर वही स्वर सुनते ही नंद के हाथ से दर्पण छूटकर गिरता है ऑर टूटता है। सुंदरी कारण जानना चाहती है कि दर्पण का टूटना क्या अकारण ही था या उस समय आप कोई और ही बात सोच रहे थे। जैसे उसे अंधविश्वास सा हो जाता है कि कुछ अनिष्ट होनेवाला है। उसे लगता है नंद यशोधरा के बारे में सोच रहे थे। लेकिन नहीं नंद बुध्द के बारे में सोच रहे थे। नंद सुंदरी को बनाता है। फिर बात कुछ बन जाती है। नंद सुंदरी के ललाट पर विशेषक बना रहा होता है तभी अलका दौड़ती हुई आकर यह समाचार देती है कि बुध्द स्वयं आये थे और भिक्षा पाये बिना वापस लौट गये। नंद विचलित होता है। सुंदरी नंद को भेज देती है। और उसके वापस आने तक विशेषक का गीला बनाये रखने की शर्त भी रखती है। नंद माफी माँगने चला जाता हैं। दूसरा अंक यहाँ पूरा होता है। यहाँ अंक के अंत में लगता हैं कि अब तक कुछ ऐसी छोटी-मोटी घटनाएँ घट चुकी है जो सामान्य सी लगती है। उससे सुंदरी और नंद के जीवन पर प्रभाव ड़ाल्ने की नाकामयाब कोशिश लगती है। लेकिन दोनों के मन में अंदर कुछ उमड़-घुमड़ रहा है जो इस अंक में ऊपरी तौर पर नजर नहीं आता।

तृतीय अंक में दिन ढ़ल चुका हैं। कमरे की वही स्थिति है। नंद वापस नहीं आये। सुंदरी चिंतित है। अलका सूचना देती है कि हंस का जोड़ा तालाब छोड़कर गया है। सुंदरी को खेद है कि तालाब का आकर्षण उन्हें नहीं बाँध सका। नंद को लेकर भी वह यही कहती है - 'मुझे खेद है तो यहि की जितना समय (विशेषक को) इसे गीला रखना चाहिए या उससे कहीं अधिक समय तक मैंने इसे गीला रखा।''[७६] नंद को जबरदस्ती दीक्षित कर दिया गया। भिक्षापात्र न लेकर नंद जंगल की ओर चले आते हैं। व्याघ्र से युधद करके वापस लौ आया तो अलका द्विधा स्थिति में होती है। तभी नंद कहता हैं 'उसे जगाओ नहीं, सोने दो।' भिक्षु अ नंद और नंद में बहस होती है। सुंदरी की नींद खुलती है तो नंद को 'दूसरा व्यक्ति' कहती है। नंद स्वयं को अनिर्णय की स्थिति में पाता है। सुंदरी के पास है तो बुध्द का आकर्षण उसे है। अलका तनावपूर्ण स्थिति को सँभालना चाहती है। नंद का नया रूप देखकर सुंदरी

आहत होती है। सुंदरी कठोर शब्दों में कहती हैं - 'लौटकर वे नहीं आये हैं। जो आया है वह व्यक्ति कोई दूसरा है।' इस बार नंद आहत होता है। ''तो तुम भी कह रही हो कि मैं कोई दूसरा व्यक्ति हूँ ? केवल इसलिए कि किसी के हठ ने मेरे केश काट दिये है? मुझे पहले से थोड़ा अपरूप कर दिया है? क्या इतने से ही व्यक्ति एक से दूसरा हो जाता है?''[७७] सुंदरी का नंद पर से विश्वास टूटता है। सुंदरी कोई भी बात नहीं सुनती। नंद भी आहत होता है और इसी कश्मकश में कुछ स्तब्ध सा खड़ा सुंदरी को देखता है और आहत भाव से सामने के द्वार से निकल जाता है। 'कालिदास' की तरह यह भी सुंदरी को छोड़कर चला जाता है।

यहाँ स्पष्ट है कि एक-दूसरे को समर्पित होकर भी ''बस इतना ही समझते है ये लोग'' की परिभाषा लक्षित होती है। एक दूसरे को न समझ पाने का अपरिचय दोनों को अलग कर जाता है। एक दूसरे को न समझना आज की भी विडंबना हैं। स्त्री पुरूष को अपने में बाँधना चाहती है और पुरूष बँधकर भी उससे ऊपर उठना चाहता है। मनुष्य हमेशा से ही प्रकृति और निवृत्ति में झूलता रहा है और झूलेगा भी। जितना आकर्षण उतना ही विकर्षण। एक तरफ मनुष्य मुक्ति चाहता है एक तरफ बंधन। शायद और सचमुच के बीच झूलती यह जीवन की वास्तविक विडंबना है।

चरित्र चित्रण

'लहरों के राजहंस' का अंतिम नया रूप सन् १९६८ में कायम हुआ। राकेश ने 'सौंदरनंद' को आधार मानकर प्रमुख पात्रों और घटनाओं की सृष्टि की है। नंद (नायक) और सुंदरी (नायिका) के रूप में है और इनका अंतर्द्वंद्व प्रखर होने के कारण 'आषाढ़ का एक दिन' से कहीं आगे अपनी जगह कायम किय हुए है। नाटककार पात्रों के अंतर्द्वंद्व का संबंध आज के जीवन संदर्भ से जोड़ते है।

अन्य नाटकों की भाँति ही ब्हुत कम पात्र है। सुंदरी, नंद, श्वेतांग, अलका, श्यामांग, शशांक, मैत्रेय, नीहारिका, शेफालिका, भिक्षु आनंद, बीजगुप्त, नागदास, मंदारक आदि। प्रमुख रूप से नंद और सुंदरी है। अप्रत्यक्ष रूप से गौतम बुध्द और यशोधरा पात्र के रूप में आये है।

सुंदरी

'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका की तरह सुंदरी भी इस नाटक की प्रमुख पात्र है। मल्लिका की तरह वह ऐसा केंद्र है जिसके चारों ओर सभी घटनाएँ, सभी पात्र चक्कर लगा रहे हैं। सुंदरी रूप गर्विता है। लेकिन प्रथम अंक में ही उसका रूप-गर्व चकनाचूर होता है। प्रथम अंक में कामोत्सव का आयोजन और उसका उनमें झलकता हुआ दर्प, रूप गर्व, यशोधरा को लेकर उपहास और प्रणय पर दृढ़ आत्मविश्वास और उसके आगे नंद कुछ भी नहीं कि स्थिति लिए हुए हमारे सामने सुंदरी का चरित्र स्पष्ट हो जाता है। ''जिसमें फ्रायड़ का 'इड़' और 'इगो' वर्तमान है।''[७८]

तीन अंकों की प्रदर्शित घटनाएँ सुंदरी के कक्ष में घटित होती है। उसका मंच पर प्रवेश और चेहरा यही कह जाता है कि वह जो भी चाहती है करके ही दम लेगी। उसे देवी यशोधरा से ईर्ष्या है। यशोधरा के व्यक्तित्व को 'आकर्षण की हार' मानती है। अलका से कहती है 'अलका । नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है, तो उसका आकर्षण उसे गौतम बुध्द बना देता है।''[७९] उसे अपने अहंकार में बुध्द की महानता स्वीकार्य नहीं। प्रकृति और भोगवाद की आकांक्षिणी सुंदरी कहती है - '..... कोई गौतम बुध्द से कहे कि कमलताल के पास आकर इनसे (राजहंसों से) भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात कहें। .... सोचती हूँ उसदिन एक बार भी गौतम बुध्द का मन नदी तट पर जाकर उपदेश देने का नहीं होगा।''[८०] सुंदरी की यही गर्वोक्तियाँ अंत में उसीकी विडंबना बन जाती है।

सुंदरी को 'श्यामांग' अच्छा नहीं लगता क्योंकि कहीं पर वह नंद के अंतर्मन का प्रतीक है। नंद को भी वह 'कोई और' कहती है।

सुंदरी में आत्मसम्मान अधिक है। पति का अतिथियों के यहाँ जाना, देवी यशोधरा से मिलना उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाता है। दूसरी ओर कामोत्सव के प्रचंड उत्साह के आगे पति की मनस्थिति कोई मायने नहीं रखती। तनेजा तो सुंदरी का अहं नंद में देखते हैं - 'नंद सुंदरी के चेहरे का ऐसा दर्पण है जिसमें वह अपने अहं का प्रतिबिंब देखकर आत्मतुष्ट होती रहती है।'[८१] वह नागीण कि तरह घायल होने पर भी फुंकार मारती है। ''मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल-रखूँ-

क्यों ?''[८२] कामोत्सव की विफलता के बाद अगली सुबह वह शांत होती है। नंद के हाथों दर्पण का टूटना उसके अहं का टूटना है। वह अंदर से भयभीत और अव्यवस्थित है। नंद के आने तक विशेषक को गीला रखने की शर्त रखती है। जाते-जाते नंद भी जैसी उसकी दासता स्वीकार करता है, 'मुझे सदा वही करता जो तुम चाहोगी।' तीसरे अंकर में नंद लौट आता है तब वह अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर पाती। नंद को 'दूसरा व्यक्ति' कहती है। '... चाहती तो रोक सकती थी। परंतु रोकना मैंने नहीं चाहा, क्योंकि वैसा कराना दुर्बलता होती। अब इतना संतोष तो है कि दुर्बलता कहीं थी, तो मुझ में नहीं थी।''[८३] नंद में अब भी वही अनुराग है। नंद द्वारा अपनी स्थिति स्पष्ट करने के उद्देश्य से कहे गये लंबे-लंबे संवादों का उत्तर एक-एक वाक्य के जहर बुझे संवादों से देकर नंद को आहत, स्तब्ध, असंयत, हताश, व्याकुल और उत्तेजित करती जाती है।[८४] नंद के जाते ही सिसकती है। सुंदरी अपनी ही क्लांति से मरनेवाली मृग का प्रतीक बन जाती है। न हारी हुई सुंदरी अंत में हार जाती है।

नंद

नाटका का प्रधान पात्र है नंद जो सुंदरी की तरह अपने ढंग से नाटकीय-कथा के द्वंद्व को झेलता नजर आता है। सुंदरी से ज्यादा नंद का द्वंद्व नाटक को अपरिमित शक्ति प्रदान करता है। जिसकी ''कसक और पीड़ा कामुक प्रेमी एवं निवृत्तिवादी भिक्षु के साँचों में से किसी में भी स्वयं को फिट न बैठा पाने की''[८५] पीड़ा लिए हुए अंत तक नजर आता है।

उसकी स्थिति अनिश्चय में उठे-रूके पैर के समान दुविधापूर्ण है। वह स्वयं को एक टूटा हुआ नक्षत्र पाता है जिसका कोई वृत्त नहीं है, जिसकी कोई धुरा नहीं हैं। वह हमेशा अपने अस्तित्व को ढूँढता नजर आता है। ''वह किसी का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता नहीं जीना चाहता।'' वह प्रवृत्ति और निवृत्ति की प्रकृत्तियों के बीच अंत तक झूलता है। वैसे तो हम नंद का साक्षात्कार प्रथम अंक में ही पाते है लेकिन काफी बाद में वह भी अंतर्मुख भावपूर्ण चेहरे की थकान लिए हुए। 'मृत और जीवित' मृग की तरह उसका जीवन नजर आता है।

नंद एक प्रेमी-पति के रूप में नजर आता है। वह सुंदरी के चेहरे का दर्पण है। नंद सुंदरी से कहता है - 'तुम्हारी कही बात तुम्हारे लिए उतना महत्त्व नहीं रखती जितना मेरे लिए। यह तुम नहीं जानतीं।' अंत में सुंदरी से आहत होकर भी उसके ही इशारे पर चलता है।

श्यामांग से उसे विशेष स्नेह है शायद 'कहाँ हूँ मैं, क्यों हूँ यहाँ?' इस तरह श्यामांग के स्वर उसे अपने लगते है। सुंदरी का सोना और नंद का एकालाप नंद के अंतर्मन को स्पष्ट करता है। नंद में अब भी सुंदरी के प्रति वही अनुराग है इसलिए शायद पहले प्रेती-पति का रूप पाने के लिए सुंदरी को छोड़कर जाता है लेकिन आहत मन से।

'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका नहीं चाहती थी कि कालिदास वापस जाए और यहाँ नंद सुंदरी के लिए 'दूसरा व्यक्ति' बन जाता है और वह जैसे मजबूर है वापस जाने के लिए।

श्यामांग

श्यामांग का चरित्र एक आभास के रूप में लिया गया है। 'कहाँ हूँ मैं, क्यों हूँ यहाँ' का प्रलाप सुनानेवाला श्यामांग नंद के अंतर्मन के द्वंद्व का प्रतीक है और नंद के मन की संकुलता को रेखांकित करता है। श्यामांग अलका का प्रेमी है। सुंदरी उसे हंसों पर पत्थर फेंकने के अपराध में अंधकूप में डालने का आदेश देती है और उसकी विक्षित स्थिति देखकर क्षमा कर देती है। माना कि श्यामांग के ज्यादातर संवाद नेपथ्य के जरिए दर्शाये गए है लेकिन उसकी अनिवार्यता कम नहीं होती। इसका चित्रण राकेशजी की नयी उपलब्धि है। तनेजा तो कहते हैं - "इस संपूर्ण नाटक के भव्य वातावरण में श्यामांग जैसे छतनार देवदार और बरफ में से झाँकनी एक स्याह टूटी रहनी। आसपास की हरी-भूरी सफेद व्यवस्था से अलग, उसे सारे परिदृश्य में बाधा डालती, फिर भी उस परिदृश्य की संपूर्णता कें लिए अनिवार्य।"[८६]

अलका

सुंदरी की निकटतम सखी के रूप में नजर आती है। अलका सुंदरी के लिए और राजभवन के लिए एक उत्कृष्ट दासी है। सुंदरी की ही नहीं बल्कि प्रत्येक की मनस्थिति में सहायक होनेवाली है।

सुंदरी की हर बात उसकी समझ में आती है। उसमें संकोच, विनम्रता, व्यवहार कुशलता, सेवा वृत्ति, सहानुभूति, प्रेम के लिए आकुलता - उत्सुकता दिखाई देती है। कुछ मिलाकर वह दासी, सखी और प्रेमिका का मिला-जुला रूप है।

भिक्षु आनंद बुध्द के प्रमुख शिष्य है और उन पर पूर्ण रूप में बौध्द प्रभाव छाया हुआ है। नंद के मन को जाते-जाते विचलित कर जाते हैं। उनके व्यक्तित्व से सहजता, दृढ़ता और आत्मविश्वास झलकता है। गौण पात्रों में श्वेतांग, शशांक, मैत्रेय, नीहारिका, शेफालिका, बीजगुप्त, नागदास और मंदारक है। इनमें घटनाओं की सूचना देने के लिए अनिवार्य बने हुए श्वेतांग और मैत्रेय है। अप्रत्यक्ष रूप से गौतम बुध्द और यशोधरा सारे दर्शक वर्ग को उनकी निवृत्ति मार्ग से प्रभावित करने से चूकते नहीं। सारी चरित्रसृष्टि पर आद्यंत बुध्द छाया है।

संवाद कथोपकथन

संवादों से नाटक में प्राणवत्ता का संचार होता है। संवाद की परंपरा तो भारतेंदु से चली आ रही है। संवादों के माध्यम से ही पाठक या प्रेक्षक उन घटनाओं की सूचना प्राप्त करता है जो रंगमंच पर घटित होती है। 'लहरों के राजहंस' में तनाव शिथिल और द्वंद्व सूक्ष्म होने पर भी नाटकीय प्रभाव को कायम बनाये रखने में संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। मनोवैज्ञानिकता नाटक की गरिमा बढ़ाती है। चारित्रिक सूक्ष्मता के विकास में सहायक, कथावस्तु का विकास संवादों की अपनी विशेषता है। यूँ कहिए नाटक के संवादों में संवेदना की तरलता प्रत्येक स्थिति में विद्यमान है।

यहाँ दर्शक उबता नहीं बल्कि उसके मन में बैचेनी है कि नंद का आगे क्या होगा? क्या सुंदरी उसे समझ पाएगी? क्या नंद सुंदरी के मन की हलचल का पता कर पाएगा? वे संवाद हीतो हैं जो नंद और सुंदरी के व्यक्त्वि को उजागर करते हैं। नंद का दुविधाग्रस्त होना इस संवाद में स्पष्ट रूप में दिखाई देता हैं। नाटक में नंद का प्रवेश और सुंदरी का पूछना 'आप कुछ कह रहे थे?' तो नंद का उत्तर, 'हाँ, नहीं...।' सुंदरी का अहं भी उसके संवादों से ही झलकता है - 'कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय! मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखूँ - क्यों? मेरी कामना मेरे अंतर की है।'

नंद के दुविधाग्रस्त व्यक्त्वि को उजागर करते लंबे संवाद रंग-निर्देश के कारण बोझिल नहीं बने। नंद का अंतर्मन श्यामांग को भी नेपथ्य संवाद से ही जान जाते हैं। संक्षेप में जो-जो पात्र जिस जगह पर है उसके संवाद उसकी मनस्थितियों, उसके व्यक्तित्व, उसकी हर बात को जिज्ञासा के रूप में दिखाने में राकेशजी ने कहीं कसर नहीं छोड़ी। सुंदरी के छोटे व्यंग्यात्मक संवाद तो दर्शक के होश उड़ा देते हैं। संक्षेप में संवाद पात्रानुकूल, देशकाल के अनुकूल, सार गर्भित, संक्षिप्त, चुटीले और मनोविश्लेषक भी है।

रस

''नाटक प्रत्यक्ष होने के कारण सामाजिक की चित्तवृत्तियों को रमाने की अद्‌भुत क्षमता रखता है। यूँकि नाटक को सामाजिक नेत्र और श्रवण द्वारा ग्रहण करता है, इसीलिए उसका रसास्वादन अधिक बढ़ जाता है।''[८७] 'प्रवृत्ति और निवृत्ति' इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच मनुष्य का संघर्ष 'लहरों के राजहंस' का प्रमुख उद्देश्य है। नाटक में श्रृंगाररस की चरमसीमा भी है और आगे जाकर करूण विप्रलंभ श्रृंगार में परिणत होती है। मानव जीवन में मे दोनों रस महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अभिनेयता

नाटक साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा जनमानस को अधिक प्रभावित करता है क्योंकि अभिनेयता सामाजिक को अपने करीब लाती है। आज के युग में अभिनेयता की दृष्टि से वही नाटक सफल हो सकता है जिसमें केवल ऐसे ही दृश्य हो जो रंगमंच पर प्रस्तुत किये जा सके। 'लहरों के राजहंस' में यह अभिनेयता सब तरह से परिपूर्ण है।

नंद का जंगल में आखेट करना, श्यामांग का कमलताल में पत्थर फेंकना, नंद का गौतम बुध्द के पास आकर मुण्डित होना, नंद का जंगल में व्याघ्र से युध्द जैसी परोक्ष घटनाएँ रंगमंच पर संवाद या ध्वनि के माध्यम से दिखाई जाती है और हम उससे ऐसे परिचित हो जाते है जैसे यह सारे दृश्य हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से घट चुके हो।

नाटक के तीनों अंक सुंदरी के कक्ष में पूरे होते हैं। रंग-निर्देशक को दृश्यों को प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं होती। पार्थिव-अपार्थिव मूल्यों के बीच आधुनिक मनुष्य लड़ रहा है। नंद का

सुंदरी को छोड़कर चले जाने तक की सारी घटनाएँ रात उतरने के समय से लेकर पूरी रात के बाद पूरा दिन और अगली रात में घटती है। संकलनत्रय की दृष्टि से भी सफल हैं। रंग-निर्देश ऐसे है जिससे निर्देशक को कोई कठिनाई नहीं होती। नाटककार के मन में पहले से ही एक बिंब था - ''दो दीपाधार ! एक के शिखर पर पुरूष मूर्ति - बाँहे फैली हुई तथा आँखे आकाश की ओर उठी हुई। दूसरे के शिखर पर नारी-मूर्ति - बाँहें सिमटी हुई तथा आँखे धरती की ओर झुकी हुई।''[८८] रंग संकेतों में जैसे 'आगे आती हुई', 'उद्भ्रांत सा', 'आसन से उठती हुई', 'मदिरा कोष्ठ की ओर बढ़ता हुआ', 'बात काटकर' आदि शामिल है।

नाटक के अंत में 'इसके बाद क्या हुआ' की पुष्टि नाटककार ने दी है। नंद चला जाता है और सुंदरी उसके जाने के बाद ही सिसकती है। संवाद भी अभिनय के अनुकूल ही है। लंबे संवाद भावानुकूल एवं परिस्थिति के अनुकूल है और छोटे संवाद अभिनेयता में चार-चाँद लगाते हैं। नाटक की भाषा भी अभिनय के अनुकूल है। सरसता और चित्रात्मकता तथा प्रवाहपूर्ण शुध्द साहित्यिकता के साथ प्रयोगात्मकता राकेश का नया प्रयोग है। अनेक नाट्य संस्थाओं का सफल मंचन इसका प्रमाण हैं।

उद्देश्य

आज की दुनिया में हम अपने भीतर अधिकाधिक विभाजित होते जा रहे हैं। दुविधा की स्थिति हमें तलाश की ओर भेजती हैं। हम एक तरफ बँधनों में बँधना चाहते है और दूसरी तरफ उन्हीं बंधनों से छुटकारा। इसी जटिल मानसिकता को प्रस्तुत करते हैं नाटककार मोहन राकेश, नाटककार यह भी स्वयं कहते हैं - 'नाटका का मूल अंतर्द्वंद्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में 'आषाढ़ का एक दिन' के अंतर्गत है।'[८९]

इस नाटक में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति की उत्सुकता नहीं है। बल्कि आधुनिक जीवनमूल्यों का उद्घाटन करने की सफल चेष्टा है। नंद और सुंदरी वह माध्यम है जो निवृत्ति और प्रवृत्ति के बीच झूलते हुए कोई सही रास्ता ढूँढ नहीं पाते और अलगा जाते हैं।

प्रतीक विधान

'लहरों के राजहंस' नाटक का यह शीर्षक ही संप्रेषण की दिशा में चुना गया एक प्रतीक है। यह प्रतीक अपने में मिथक का संदर्भ लिए हुए है। मिथक का आधार स्त्रोत है अश्वघोष का काव्य 'सौंदरनंद'। पार्थिव-अपार्थिव मूल्यों के द्वंद्व को स्पष्ट करने के लिए नंद और सुंदरी ये दोनों प्रमुख प्रतीक पात्र है। नंद अपनी तलाश करनेवाला संशयात्मक जीव का प्रतीक है।

रंगोपकरण भी प्रतीक के अर्थ समाए हुए हैं। मत्स्याकार आसन जीवन के भोगों का झूला आंदोलित मन का, पुरूष दीपाधार नंद का स्त्री दीपाधार सुंदरी का आदि।

अनेक घटनाएँ भी प्रतीकात्मक हैं। कमलताल नंद का घर है, नंद और सुंदरी राजहंस हैं और लहरें उनकी परिस्थितियाँ। श्यामांग भी प्रतीक चरित्र है नंद के मन की संकुलता का। छाया भी प्रतिकरूप उस परोक्ष की छाया है जिसके चेतन रूप से श्यामांग बचना चाहता है। मृग का जीवित होते हुए भी अपनी क्लांति से मरना - यह परिणति किसी की भी हो सकती है। दर्पण का टूटना अनिष्ट घटना का जैसे संकेत है। दो दीपाधारों का बिंब तो राकेशजी की सार्थक तलाश है।

नामकरण

'लहरों के राजहंस' का नामकरण परंपरागत रचनाओं के नामकरण से भिन्न लगता है और हैं भी। बंधन और मुक्ति के द्वंद्व को लेकर नंद का कहीं एक जगह स्थिर न रह पाना जैसे हंसों का लहरों पर स्थिर न रहने जैसा है। अश्वघोष के सौंदरनंद काव्य के श्लोक के आधार पर यह नामकरण नाटककार ने किया है -

''सोऽनिश्चयान्नपि ययौ न तस्थे।
तरंगस्तरंगेष्विव राजहंसः॥''

नंद और सुंदरी के मन में जो अंतर्द्वंद्व की लहरें उठती हैं उन्हीं का नामकरण 'लहरों के राजहंस' है।

आधुनिकता

साहित्य ही ऐसी चीज है कि उसमें मानव का अंतर्द्वंद्व हमेशा से ही विस्तारित होता रहा है चाहे वह प्राचीन हो या आधुनिक। प्रत्येक युग अपने में आधुनिक रहता है। क्योंकि हर युग में नयी समस्याएँ जन्म लेती है। राकेशजी की आधुनिकता का एक पहलू यह है कि जो वे बीते हुए से 'शेअर' करते है और दूसरा यह है कि जो उनकी अपनी देन है। अतीत का अन्वेषण राकेशजी का अपना गुण है।

आधुनिकता की यही एक विशेषता मानी जाती है कि उसमें अंत नहीं होता। समस्या बनी रहती है। राकेशजी के नाटकों का अंत सुखांत नहीं हैं बल्कि अनिश्चित, अनिर्णित। विषाद है लेकिन स्वाभाविकता और आधुनिकता लिए हुए।

यहाँ नंद और सुंदरी की कथा आश्रय मात्र है। कथानक में ही अपने नवीनता लिए हुए है। यह नाटक तीन अंकों में विभाजित अपने में सशक्त और संपूर्ण है। इन्सान कोई भी हो उसे शंकाएं, समस्याएं घिरती रही है। उर्मिला मिश्र नंद के बारे में यही कहती है - ''नंद आधुनिक मनुष्य के संदर्भ में ही नहीं किसी भी देश काल के द्विधाग्रस्त व्यक्ति का चरित्र है।''[९०] वह एक ऐसे बिंदु की तलाश में है जो उसे नहीं मिलता। भटकता रह जाता है। सुंदरी के विचारों में भी आधुनिकता की व्याख्या है - 'बहुत दिन एकतार जीवन बिताकर लोग अपने से ऊब जाते हैं तब जहाँ भी कुछ नवीनता दिखाई दे उसी ओर वे उमड़ पड़ते हैं।'

प्रतीकों की नवीनता इस नाटक की आधुनिक देन है। प्रतीक विधान में मैंने इसकी चर्चा की है। नामकरण से लेकर रंगोपकरण, वस्तुएं, पात्र, घटनाएं आदि की प्रतीक व्यवस्था के आधुनिक रूप है। ऐतिहासिक पात्रों का चुनाव है लेकिन उनका अंतर्द्वंद्व ज्वलंत है। अनिर्णय की स्थिति आधुनिकता का संकेत है। संवाद आधुनिक अंर्तद्वंद्व का ही नारा लगाते हैं। नंद का लंबा स्वगत कथन है लेकिन शिथील नहीं क्योंकि वहाँ आधुनिक मनुष्य की टूटी निराशा नजर आती है - ''क्यों मैंने जान बूझकर आत्मविनाश को निमंत्रित किया और फिर स्वयं ही आत्मरक्षा के लिए लड़ गया।'' इस नाटक की मंचीयता भी आधुनिक है।

जीवन की कई परतें हमारे सामने खुल जाती हैं। हम जानते हैं कि यह क्या होने जा रहा है लेकिन समझ नहीं पाते कि क्या करना चाहिए। और मानव इस नियति की यातना को झेल नहीं पाता और नियति की खोज में असमर्थ रहता है। यही आधुनिक भावबोध 'लहरों के राजहंस' में हैं।

२.३.३ आधे-अधूरे

महानगरीय जीवन के मध्यवर्गीय परिवार के सदस्यों के जीवन की रोज की 'किटपिट-किटपिट' का प्रकाशन करनेवाला 'आधे-अधूरे' का प्रकाशन सन् १९६९ में हुआ। यह राकेशजी का तीसरा और असफलताओं का परिपूर्ण नाटक हैं। यहाँ पर राकेश ऐतिहासिक आधार का वरण नहीं करते बल्कि वर्तमान जीवन का यथार्थ चित्रण करते हैं। ''पहले दो नाटकों की अपेक्षा इसमें समसामायिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए समसामायिक जीवन का ही आधार बनाया गया है।''[९१] पूर्ण रूप से नाटकीय ढंग को व्यक्त करता हुआ पूरे परिवार के लोगों का अधूरापन व्यक्त करने में यह नाटक सही अर्थ में सक्षम है। पती-पत्नी के अधूरेपन से बच्चे भी अधूरे ही दिखाई देते हैं।

'आधे-अधूरे' शीर्षक ही सोचने-विचाराने की शक्ति को चैलेज करता है। ऐसा लगता है कि राकेशजी ने 'आधे-अधूरे' के निर्माण में आदमी को पूरी तरह खोजा है। जीवन किसी का भी हमेशा आधा होता है अधूरा होता है लेकिन किसी हद तक। लेकिन यहाँ मध्यवर्गीय परिवार इतना अधूरा है कि हमेशा वह घुटन, निराशा ही अनुभव करता है। वर्तमान जीवन में कितनी ही समस्याएं सामने खड़ी होती है इसका यथार्थ चित्रण यह पूरा परिवार करता है। इसमें एक बात ऐसी लगती है कि इसमें कोई एक प्रमुख कथा नहीं है। बल्कि कुछ ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई हैं कि हर एक व्यक्ति की अधूरी कथा चित्रित हुई है। आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति ने उनकी मानसिक स्थिति को खोखला कर दिया है। हर एक की अपनी माँगे हैं लेकिन सभी के प्रश्नों का समाधान नहीं ढूँढा जा सकता क्योंकि यही समकालीन जिंदगी की विडंबना है। इस नाटक में न तो अंकों का समायोजन हैं और न दृश्यपरक विधान। संक्षेप में पति-पत्नी का गृह कलह और कुंठायें पारिवारिक जीवन को क्लेशपूर्ण और असहनीय बन देती है। यह नाटक हिंदी नाटक विकास-यात्रा में 'मील का पत्थर' बन चुका है।

कथा संघटन

स्थान : 'आधे-अधूरे' का कार्यस्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफे, कुरसियाँ, मेंजे, अलमारी, किताबें, फाइलें और अधटूटा टी सेट आदि है। समझ में नहीं आता कि इनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था।

राकेशजी ने जैसे 'आधे-अधूरे' के निर्माण में नाट्य-रूढ़ियों को पैंरों तले दबा दिया है। यहाँ वस्तु का स्वरूप सुखांत अथवा दुखांत के साँचे में ढला नजर नहीं आता है। प्रारंभ, मध्य और अंत का जैसे निर्वाह नहीं हुआ है बल्कि एक अलग चुनौती स्वीकार की है मौजुदा जीवन की विडंबना के कुछेक सघन बिंदुओं के रेखांकन की।

राकेशजी ने यहाँ नितांत नया प्रयोग किया है। वस्तु को अंकों में विभाजित न करके दो भागों में बाँट दिया है। विभाजन का बिंदु अंतराल - विकल्प के द्वारा दिखाना अनूठा प्रयोग लगता है। अंतराल के इस पार आशाएं है, प्रयत्न भी है लेकिन उस पार आशाओं की हत्या और आगे रास्ता नहीं की मजबूरी।

सामान्यत: नाटक की शुरूआत एक कमरे से होती है जिसमें सावित्री और महेंद्रनाथ एक मध्यवर्गीय परिवार के अधेड़ उम्र के दंपति है। उनकी तीन संताने हैं। अशोक, बिन्नी और किन्नी। महेंद्रनाथ दो-चार विभिन्न बिजिनेसों में हाथ डाल घाटा उठा चुका हैं क्योंकि उसने पहले से रूपये ले-लेकर खर्च किये हैं। अब वह निकम्मा, बेकार, नाकारा आदमी बना हुआ है। सावित्री एक ऑफिस में काम करती है। तथा सारे घर की जिम्मेदारी उसी पर हैं। बिन्नी (बीस वर्षीया) अपने घर आने-जानेवाले व्यक्ति के साथ भाग जाती है फिर भी मायके में आना-जाना होता है। अशोक (इक्कीस वर्षीय) बी.एस्सी. पूरा नहीं करता है और अब बेकार है। किन्नी (तेरह वर्षीया) स्कूल में पढ़ती है। अपनी उम्र से भी ज्यादा समझदारी होने की बेवकूफी लिए हुए।

महेंद्रनाथ सावित्री के तानों से तंग आकर अपने मित्र जुनेजा के यहाँ जाता है, जुनेजा विदेश से लौटा है, अत: उसके लिए कोई नयी योजना लाया होगा। निराश होकर इसी आशा में जुनेजा

के पास जाता है। जगमोहन का ट्रांसफर फिर से दिल्ली में हुआ है। सावित्री को आशा है जगमोहन उसे अपना लेगा और उसी के सहारे हमेशा के लिए घर छोड़ने का फैसला कर चुकी है। अशोक को नौकरी दिलाने के लिए सिंघानिया की भी खुशामद करती है। बिन्नी स्वयं के और मनोज के बीच पड़ी दरार का कारण जानने के लिए माँ के यहाँ आती है। किन्नी को अपनी माँगे पूरी होने की आशा है। अंतराल विकल्प से पहले अशोक अपनी सारी बेबसी को मैंगजीन में निकली हुई तस्वीर को कैंची से चक्-चक काटने में व्यक्त करता है और उसके बड़े-बड़े टुकड़े नीचे फर्श पर बिखर जाते हैं। अंतराल विकल्प के पश्चात् की वस्तु प्रत्येक पात्र की अपनी विडंबना व्यक्त करती है। एक बंद डिब्बा जो घर के किसी अस्त्र से नहीं खुलता क्योंकि वे अस्त्र भोथरे हो चुके है। बिन्नी उसे खोल नहीं पाती। अशोक बाहर से खुलवा भी लाता है, परंतु उसके अंदर के स्वादिष्ट पदार्थ का स्वाद कोई भी नहीं ले पाता। सबके सामने निराशा है, बेबसी है।

सावित्री ने हमेशा पूरे आदमी की तलाश में जुनेजा, शिवजीत, मनोज, सिंघानिया, जगमोहन का साथ पा तो लिया मगर सफल नहीं हुई। मगर उसे घर वापस आना पड़ता है। महेंद्रनाथ जुनेजा के यहाँ जाकर बीमार पड़ जाता है। वह सावित्री के बगैर जी नहीं सकता। विवश होकर लौट आता है। और उससे भी ज्यादा बेकारी के कारण। बिन्नी अपने माँ के घर हमेशा इसीलिए आती वहीं कि ऐसी क्या चीज है इस घर में जो उसे अपने घर में ठीक नहीं रहने देती। लेकिन अब वह जान चुकी है। उसकी आशा नष्ट हो चुकी है। वह भी इस घर में रहने के लिए विवश है। अशोक अंतराल विकल्प से पहले तस्वीरें काँटता नजर आता है। बाद में उसने कोई तस्वीर नहीं काँटी। उसका भविष्य अँधेरा बन चुका है। किन्नी अपनी करतूतों की वजह से कमरे में बंद कर दी जाती है लेकिन अब वह खुद अंदर से दरवाजा बंद करती है और खोलना नहीं चाहती। वस्तु का अंत ही कहीं नजर नहीं आता। अंत ही फिर से प्रारंभ नजर आने लगता है क्योंकि यहीं से आरंभ होकर यहीं पर अंत होगा। रास्ता नजर नहीं आयेगा। सब आधा रहेगा, अधूरा रहेगा।

संक्षेप में कथानक का सबसे प्रबल आकर्षण है विविध जीवन स्थितियों का यथातथ्य अंकन। वस्तु की चाहें यहाँ परंपरागत माँगे पूरी नहीं हो पायी हो। आधुनिकता का तीखा प्रहार ज्यादा संगत है चाहे कथा का स्तर बिखरा हुआ हो।

चरित्र सृष्टि

वस्तु के नये निर्माण की तरह चरित्र-निर्माण भी नया है। इन नाटकीय चरित्रों की जीवनशक्ति है द्वंद्व और संघर्ष। प्रत्येक पात्र अपना अधूरापन दूसरे पर थोपना चाहता है। इनका संघर्ष अपने आप में और अपने लोगों के बीच पनपता है। कुल मिलाकर यह पात्र यथातथ्य घटनाओं के सहारे परंपरागत रूढ़ियों को अस्वीकार करके अत्याधुनिक अधूरी जिंदगी का शिकार होते हैं स्वीकार्यता उनकी अनिवार्यता है। समसामायिक चरित्रसृष्टि के बारे में तनेजा का मंतव्य सार्थक लगता है - "समसामायिक हिंदी नाटकों में परंपरागत नायक का स्थान यथार्थ जीवन की त्रासदी को नंगी छाती पर झेलनेवाले चरित्रों ने ले लिया है।"[९२]

पारिवारिक विघटक के जिम्मेदार यह सभी पात्र खुद ही जैसे अपने हाथों से परिस्थिति को बिगाड देते हैं। अभाव की संताने जैसे नजर आते हैं। हमेशा अतृप्त रहते हैं और आक्रोश जैसे इनकी नस-नस में समाया हुआ है। इसके बावजूद कहीं वे एक-दूसरे के प्रति गहरा लगाव भी रखते हैं। इसीलिए अंत में सब एक घर में ही नजर आते हैं।

पात्रों की जिंदगी को लेकर सोचा जाए तो लगता है आज की आधुनिक जिंदगी ही ऐसी हैं कि हम लोग अभिशप्त जीवन ही जिए। बेकारी, घुटन, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, अतृप्त इच्छाएं जैसी बाते निम्न मध्यवर्गीय लोगों की विशेषता बन गई हो। यह चरित्रसृष्टि विशेष न रहकर सामान्य हो जाती है। नाटककार पात्रों के नाम इसीलिए काला सूट वाला आदमी, पुरूष एक, पुरूष दो, पुरूष तीन, पुरूष चार, स्त्री, बड़ी लड़की, छोटी लड़की, लड़का रख देता है बाद में पात्रों को नाम जरूर मिले हैं। कथा की तरह पात्र भी अनिश्चित है। राकेशजी ने तीनों नाटकों के पात्र पुरूष प्रधान न रहकर स्त्री प्रधान बन गये हैं। पहले दोनों नाटकों के नायक विवश हैं चले जाने के लिए और इस नाटक का नायक विवश है लौट आने के लिए।

सावित्री

सावित्री नाटक की केंद्रीय पात्र बन गई है। उसमें नायिका के परंपरागत गुण नहीं है। नाटक प्रमुख रूप से सावित्री के 'अधूरेपन' की खोज से प्रारंभ होकर 'अधूरेपन' में ही खत्म होता है। सावित्री उम्र चालीस को छती हुई भी यौवन की चमक लिए हुए पूरे आदमी की खोज में चाह रखे हुए है। वह नाटक में दो बार साड़ी पहनती हैं। वह नौकरी करनेवाली आधुनिक स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। अपनी नौकरी से घर सँभालती है। विवाह के पहले महेंद्रनाथ उसे पूरा उसी आदमी नजर आता है लेकिन बाद में पूर आदमी का आधा-चौथाई भी मानने को तैयार नहीं। वह महेंद्रनाथ को निकम्मा, लिजलिजा-चिपचिपा-सा आदमी मानती है। उसकी नजरों में महेंद्रनाथ सिर्फ घर में ही खड़ा हो सकता है।

पूरे व्यक्तित्व की खोज में उसकी जिंदगी जैसे गुजर गयी है लेकिन उसे कोई पूरा आदमी नहीं मिलता जिसका अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो। जगमोहन, जुनेजा, मनोज, शिवजीत, सिंघानिया आदि में कोई न कोई कमी उसे नजर आती है और हर एक को वह अधूरा मानती है। जगमोहन से तो उसे निराशा ही हाथ लगती है और वह अनुभव करती है कि - ''सब के सब ... सब के सब एक से? बिल्कुल एक-से है आप लोग। अलग-अलग मुखौटे, पर चेहरा ? सबका एक ही।''[९३]

दूसरी तरफ वह अपने परिवार के लिए कष्ट भी उठाती है। भारतीय नारी भी कहीं नजर आने लगती है। एक मशीन है जो कि सबके लिए आटा पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती है लेकिन महेंद्र का नाम सुनकर उसे क्रोध आता है। नाटक के अंत तक उसे लगता है कि वह महेंद्रनाथ से छुटकारा पाकर कोई और सुख का रास्ता ढूँढ निकालेगी। लेकिन नहीं निकाल पाती और विवश होकर घर लौटती है।

महेंद्रनाथ

'महेंद्रनाथ' पात्र को लेकर नाटककार ने नये शिल्प का प्रयागे किया है। एक ही अभिनेता ने स्पष्ट रूप में चार भूमिकाएं निभायी है, उसके साथ ही 'काले सूट वाला आदमी' की भी। यहाँ चुनौती नजर आती है अभिनेता के लिए। महेंद्रनाथ की सबसे प्रमुख भूमिका है इनमें ''अपने आप में

संतुष्ट फिर भी आशंकित सिंघानिया, अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन लिए जगमोहन, चेहरे पर बुजुर्ग होने के खास अहसास के साथ काँइयाँपन वाला जुनेजा, सब-के सब मूलत: जिंदगी की लड़ाई हार चुकने की भावना, छटपटाते संघर्ष के लिए नक्षम, खोखले, पलायनवादी कुंठाओं के पोटले महेंद्रनाथ के ही विभिन्न रूप है।''[९४]

महेंद्रनाथ का चरित्र ऐसा प्रस्तुत हुआ है कि उसका घर में रहना न रहने के बराबर है। एक समय था जब वह दोस्तों में बैठकर खिलता था। पार्टी-पिकनिक उसके बिना अधूरी लगती थी। उसने मित्र जुनेजा के साथ बिजिनेस किया पर वह असफल रहा। अब उसका पत्नी की कमाई पर गुजारा होता है। पत्नी सावित्री से बार-बार ताने सुनने पड़ते हैं -

पुरूष एक : क्यों मैं खड़ा नहीं हो सकता ?

स्त्री : (हलका वक्फा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो पर घर के अंदर ही।[९५]

वह खुद ही कहता है कि 'मेरी यही हैसियत है कि इस घर में जो जब जिस वजह से जो भी कह दे मैं चुपचाप सुन लिया करूँ? हर वक्त की दुत्कार, हर वक्त की कोंच, बस यही कमाई है यहाँ मेरी इतने साल की।'[९६] वह खुद को सबकी बरबादी का जिम्मेदार मानता है। वह केवल रबड़ स्टॅम्प ही नहीं सिर्फ रबड़ का टुकड़ा है - बार-बार घिसा जानेवाला । सावित्री के शब्दों में वह नाशुका, लिजलिजा, चिपचिपा-सा आदमी है। लेकिन उसके दिल में सावित्री के लिए प्यार है। चाहे उसने पहले दिनों में सावित्री की मारपीट की हो। उसे लगता है कि वह ऐसा कीड़ा है जिसने अंदर ही अंदर घर को खा लिया है।

लेकिन दूसरी तरफ वह परिवार के सब लोगों को चाहता है। 'ब्लड-प्रेशर' की बुरी हालत में वह घर लौटता है। वह कुछ भी नहीं कर सकता। वह विवश है सावित्री और परिस्थिति के आगे।

अन्य पात्र

अन्य पात्रों में इस दंपति की तीन संतानें हैं। अशोक, बिन्नी और किन्नी। अपने घर की बुरी परिस्थिति का इन पर बुरा असर पड़ा है। तनेजा तो यहाँ कह जाते है - ''ऐसे परिवार में पले बच्चे स्वभावत: विकृतियों के शिकार होगें ही।''[९७]

बिन्नी

सावित्री की अस्थिरता बीस वर्षीया लड़की बिन्नी में संक्रमक रोग की तरह प्रचलित है। वह अपनी प्रौढ़ा माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर से भाग जाती है किंतु कुछ समय वह मनोज से कटने लगती है, उसे चोट पहुँचाने में कोई अवसर नहीं खोना चाहती फिर भी उनमें आयी दरार का कारण जानने के लिए मायके आती रहती है। मनोज की बातों से उसे लगता है कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गयी हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक रहने नहीं देता। जब जुनेजा अंकल से पता चलता है कि मनोज किसके लिए घर आया-जाया करता था, तो वह टूट जाती है। वह अपने माँ-बाप के परिवार की टूटन को अपने साथ ले गई थी। उसे अपने परिवार के लोगों से हमदर्दी है ज्यादातर माँ को लेकर। वह सबके लिए चीज - सैंडविच बनाती है मगर अफसोस उसे कोई खाता नहीं। संक्षेप में वह सावित्री का दूसरा रूप है। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव है। उम्र से बढ़कर बड़प्पन भी है।

किन्नी

छोटी लड़की (तेरह वर्षीया) किन्नी 'विस्फोट' ही लगती है। उसके भाव, स्वर, चाल हर चीज में विद्रोह और बदतमीजी नजर आती है। एक तरफ वह गलत हरकतें भी करती है और घर के लोगों का अपमान भी उसे सह्य नहीं है। उसके एक मोजे में सुराख घर की माली हालत बयान करता है फिर फ्रॉक भी उसकी फ्राँ चुस्त है। कैसोनोवा जैसी किताब पढ़नेवाली और यौन संबंधों की बातों में दिलचस्पी लेनेवाली कमरे में बद कर दी जाती है। अत्यंत सिर चढ़ी, मुंहफट, जिद्दी, बिगड़ी हुई लड़की हैं। घर के लोगों की हर बात पर उसकी नजर रहती है। घर का वातावरणही उसे ऐसा बना देता है।

अशोक

उम्र इक्कीस के आस-पास। तस्वीरों के साथ जिंदगी काटनेवाला। चेहरे से यहाँ तक कि हँसी से भी, झलकती खास किस्म की कड़वाहट लिए हुए है। बी.एस्सी. पूरी नहीं की, न कहीं नौकरी पर टिकता नजर आता है। माँ के प्रति भरा-पूरा आक्रोश और पिता के प्रति सहानुभूति रखनेवाला। उसे 'सिंघानिया' जैसे बड़े लोगों से घृणा है जो उसे नौकरी देने के बजाए बिन्नी को देने में दिलचस्पी

रखता है। वह अपने को और छोटा नहीं बनाना चाहता । वह एक चित्रकार के रूप में भी नजर आता है। 'आज की युवा पीढ़ी की पीड़ा, अस्वीकार, पलायन और आक्रोश तथा आंतरिक तनाव को अपने तेजाबी रंग से प्रकट करता है।'[९८]

यहाँ 'आधे-अधूरे' में चरित्र-चित्रण का दर्पण के समान प्रस्तुत हैं, जिसमें हम अपने को, अपने आसपास को देखते हैं। 'हिंदी नाटक के विकास में 'मील का पत्थर' साबित हुआ यह नाटक चरित्रसृष्टि के धरातल पर से कितना 'आधा-अधूरा' और कमजोर है यह देखकर आश्चर्य होता है।'[९९]

संवाद योजना

पहले दो नाटकों की अपेक्षा 'आधे-अधूरे' के संवाद ज्यादा तीखे,मर्मांतिक और स्थिति सापेक्ष है। संवाद विशिष्ट तो है ही आकार से भी विशिष्ट है। उनको दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है। एक अति लघु संवाद एवं दूसरे बड़े विश्लेषणात्मक संवाद। अनेक स्तरों पर अर्थ निकालते हुए नजर आते है यह संवाद। संवादों में एक ऐसा करंट है जो तन-मन को छू जाता है। ''लघु संवाद पैने अस्त्रों के समान उठकर तेजी से गहरा वार करते हैं। वे बिजली के समान चमकते हैं और कौंधकर विलीन हो जाते हैं। लघु आकार के कथोपकथन जैसे मंच रूपी आकाश के कई कोनों से रह-रहकर चमकनेवाली बिजलियाँ बन जाते हैं और लंबे संवाद आकाश में मेघ घिरने शुरू हों - पहले छोटा-सा धब्बा फिर देखते ही देखते वह फैलकर सारा आकाश ढ़क ले और उसमें गड़गड़ की ध्वनि से गर्जन प्रारंभ हो जाए - वह गर्जन जो उस समूचे बादल में से उभरता है ... बादल के किसी खंड में नहीं। गड़गड़ाहट समस्त मेघ में से उत्पन्न होती है एवं श्रोताओं को समूचे मेघ की ओर आकृष्ट करती हुई बड़ी देर तक श्रोता के कर्णरन्ध्र व मानस पर छाई रहती है।''[१००]

प्रत्येक संवाद अपने में पीछे की परछाई लिये हुए आगे की कहानी प्रस्तुत करता है, प्रत्येक सदस्य की मनस्थिति प्रकट करता है। अंतराल से पहले छोटे संवाद है और पश्चात विश्लेषणात्मक जो २२-२३ वर्षों की कहानी कहते हैं। संवाद महेंद्रनाथ और सावित्री का पहला जीवन और उनकी आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन करते नजर आते है। छोटे संवाद तीखे और व्यंग्यपूर्ण हैं जैसे -

पुरूष एक : (गुस्से से उठता) तुम तो ऐसी बात करती हो जैसे ....

स्त्री : खड़े क्यों हो गए ?

पुरूष एक : क्यों मैं खड़ा नहीं हो सकता ?

स्त्री : (हल्का वकफा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, लेकिन घर के अंदार ही। छोटी लड़की का तो संवाद घर की विचित्र परिस्थिति ही बयान करता हैं।

''कुछ पता नहीं चलता यहाँ तो।''

लड़का : कोई और चीज नहीं है?

बड़ी लड़की : मैं कैसे बता सकती हूँ? मै तो इतनी बेगानी महसूस करती हूँ अब इस घर में कि...।

लड़का : पहले नहीं करती थी?

बच्चों का अपने ही घर में परायापन, बेगानापन महसूस कराना संवादों की अपनी विशिष्टता है। कहीं-कहीं संवादों की मौन क्रिया बहुत कुछ कह देती है। इसके पात्र उतना ही बोलते हैं जितना जरूरी है। कई संवाद दो-एक शब्दों के हैं मगर पराश्रित नहीं हैं। रंगमंचीयता और गतिशीलता के साथ संवादों में पर्याप्त नाटकीयता हैं।

रस चित्रण

बदलते सामाजिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रेम की अवधारणा में जो अंतर आया है उसे यदि स्वीकार किया जाए तो उस स्थिति में यह नाटक रसाभास के दायरे को लाँघकर रस द्वार में प्रवेश कर जाता है। 'आधे-अधूरे' में हम यही कह सकते है 'श्रृंगाराभास' अपने चरम पर है। सावित्री और महेंद्र को छोड़कर परिवार के अन्य सदस्य और उनके संपर्क आनेवाले पात्रों के क्रियाकलाप इस रस का आभार करा देते है।

सावित्री का अंत में उसी घर में लौट आना और महेंद्रनाथ को पाना जैसे संयोग श्रृंगार हैं। हाँ, यह कह पाना कठिन जरूर है कि सावित्री और महेंद्रनाथ में कोई बदलाव भी आया होगा। विवशता में ही सही श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति जरूर है। वैसे नाटका का प्रारंभ 'विप्रलंभ श्रृंगार' की स्थिति को

व्यक्त करता है। विरोधी रसों का सामंजस्य पैदा हुआ हैं - बीभत्स और श्रृंगार का। अंत में नाटक के पात्र जिस मोड़ पर खड़े हैं उनसे हमें सहानुभूति का पैदा होना 'करूण रस' की अभिव्यक्ति है। यह पात्र नियति के अभिशप्त है। संवेदना का यह धरातल उन्हें 'कार्पण्य रस' के निकट लाता है।

अभिनेयता

नाटक दृश्य और श्राव्य काव्य है और उसकी सफलता का सही मूल्यांकन रंगमंचीय विशेषताओं के संदर्भ में किया जाना आवश्यक है। राकेश के नाटक पर्याप्त रंग-निर्देश लिए हुए है। निर्देशक ओम शिवपुरी कहते है - ''इसका गठन सुदृढ़ एवं रंगोपयुक्त है। पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान रंग-प्रभावों की दृष्टि से भली-भाँति संयोजित है। पूरे नाटक की अवधारणा के पीछे सूक्ष्म रंग-चेतना नीहित हैं।''[१०१] इन्होंने नाटक का प्रदर्शन बंद प्रेक्षागृहों के साथ खुले मंच में किया और उतना ही सफल हुआ क्योंकि यह नाटक जिंदगी की गहरी उथल-पुतल पर ऊँगली रखता है।

कथावस्तु से लेकर पात्र, संवाद, भाषा, रंगसंकेत में भी रंगमंचीय गुण है। 'आधे-अधूरे' परिवार में कुछ खास घटनाओं की कहानी है। इसके दृश्य-विधान में सादगी के साथ नाटकीय संकेत इतने सीधे और स्पष्ट है कि रंगमंच पर आसानी से देखा जा सकता है। राकेश के रंग-निर्देश ही काफी है - ''मध्यवर्गीय स्तर से ढ़हकर निम्न मध्यवित्तीय स्तर पर आया एक घर।'' फिर इस घर की हालत ही समझ में आती है। सब चीजें ऐसी है कि ''उनका न होना क्या होने से बेहतर नहीं था।'' तीन दरवाजे एक ही कमरे में आते हैं। जो कार्यस्थल मकान का बैठने का कमरा हैं। कुछ अतिरिक्त सज्जा की आवश्यकता नहीं। निर्देशन संकेत से अभिनेयता में और भी रौनक आती है।

पात्र मर्यादित और अनिवार्य हैं। एक पुरूष चार की भूमिकाओं में आता है इसीलिए ज्यादा अभिनेताओं को ढूँढने की आवश्यकता नहीं पड़ती। स्त्री पात्र और पुरूष पात्र एकदम सीधी वेशभूषा पहनकर आते हैं। स्त्री केवल साधारण मेकअप लगाती है, अन्य पात्रउसे छूता भी नहीं। वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण पात्रों द्वारा हुआ है। उनका व्यक्तित्व साधारण में असाधारण लगता है। स्त्री के चेहरे पर यौवन की चाह अब भी शेष, पुरूष एक निराश की जिंदगी लिए, बड़ी लड़की बिखराव से

युक्त, उससे बढ़कर बड़प्पन लिए हुए, छोटी लड़की में विद्रोह और लड़का 'हँसी के साथ कड़ुवाहट पीनेवाला' आदि पात्रों की विशेषता अभिनेयता में और चार-चाँद लगाती है।

संवाद अभिनय के अनुकूल है। छोटे और लंबे संवाद अपने आप को व्यक्त करने में समर्थ है। पात्रों की पूरी जिंदगी कह जाते हैं। रंगमंच ये संवावद दर्शकों को उबाते नहीं, बल्कि और रोचकता बढ़ाते है कि आगे जाने क्या होनेवाला है।

भाषा रोजमर्रा की जिंदगी से ली गई है और अभिनय के अनुकूल है। आज का पाठक और दर्शक सचेत है और इसकी भाषा में व्यावहारिकता होने के कारण समझने में आसान है। अर्थ के स्तर पर यह भाषा रंगमंचीय गुणों से युक्त है। कोई दृश्य ऐसा नहीं जो अनावश्यक लगता है। खुले मंच का प्रदर्शन भाषा की कशिश को व्यक्त कर जाता है। और नाटक की यात्रा में भी कोई बाधा नहीं डाल सका।

उद्देश्य

समकालीन जिंदगी की सार्थकता प्रकट करनेवाला 'आधे-अधूरे' नाटक एक सोद्देश्य कृति है। आज के महानगरीय जीवन के एक गठन अनुभव-खंड को मूर्त रूप देना नाटककार का उद्देश्य है जिसमें काम-वासना की भूख हमारे सामने एक प्रश्नचिन्ह के रूप में खड़ी हैं। भारतीय जीवन का ढ़ाँचा इसमें दर्शित है। सभी क्षेत्रों में बदलाव मनुष्य की मानसिक स्थिति को गिरा रहा है। परिवार की विषम स्थिति के कारण आज के बच्चे, कल के जो नागरिक बनेंगे बिगड़ते चले जा रहे हैं। बिन्नी जो भटकी हुई पीढ़ी के लिए एक चेतावनी है। माँ हो या अन्य कोई व्यक्ति, उसीके गलत रास्ते पर चलनेवालों के लिए इस विशिष्ट बीमारी से बचने के लिए राकेशजी सावधानी का इशारा दे जाते हैं। किन्नी (बारह-तेरह वर्ष के बीच की लड़की) जो घुटन, निराशा महसूस करके काम-संबंधी बातें जानती है, उसकी मनस्थिति को व्यक्त किया है। संक्षेप में पाश्चात्य सभ्यता की नकल करनेवाला भारतीय परिवार टूट जाता है। जैसे नकल में मस्त रहते उनकी यह मस्ती मंजिल पाती नहीं। राकेशजी का यही कहना है कि इस प्रकार का परिवार सदा हमेशा से ही अपने सामने प्रश्नचिन्ह लेकर खड़ा रहेगा! जो-जो जिंदगी से बहुत कुछ पाने की उम्मीद करेगा उसकी जिंदगी अधूरी रहेगी। संक्षेप में मानवीय

संतोष के अधूरेपन और उसके कारणों का रेखांकन राकेशजी का मूल उद्देश्य हैं।

नामकरण

'आधे-अधूरे' ऐसी कृति हैं जिसका नाम पढ़कर ही उसमें नीहित भावों और विषयवस्तु का आभार होने लगता हैं। इसमें केवल दो शब्द है आधे-अधूरे। नामकरण में नयापन आया है। नामकरण से ही लगता है कि नाटक में जो कुछ भी चित्रित होगा आधा-अधूरा रहेगा। प्रारंभ से अंत तक सब अधूरा है जो शीर्षक से मेल खाता है। पात्रों की जिंदगी जो कुछ दिखाई देती है उससे नामकरण सार्थक लगता है। नामकरण में एक संदेश छिपा है - स्त्री और पुरूष को जीवन रूपी रथ चलाने के लिए दो पहियों की जरूरत होती है, वह पहिए समान हो, वरना रथ कहीं भी टूट सकता हैं। 'आधे-अधूरे' में सावित्री और महेंद्रनाथ टूट जाते हैं। हम सोचते - देखते थक जाते है कि कितना कुछ अधूरा है इनकी जिंदगी में। संक्षेप आधुनिक जीवन की घुटन, निराशा, कटुता, ऊब और अजनबीयत को मर्मांतक शैली में बाँधने का प्रयास इस नाटक के नामकरण में है जो सार्थक है।

आधुनिकता

मोहन राकेश समकालीन लेखकों और बुध्दिजीवियों के बीच एक ऐसे लेखक थे जिन्होंने पुरानी मान्यताओं, रूढ़ियों और विचारों पर तीखा प्रहार किया है। 'आधे-अधूरे' को 'मील का पत्थर' कहा जाता है। राकेशजी के प्रयोग सर्वथा नवीन है। उन्हें इसीलिए 'आधुनिक नाटक का मसीहा' घोषित किया है। उनकी इस रचना में यथार्थ की प्रताड़ना से उत्पन्न एक आंतरिक विवशता है। आधुनिकता का विशेष लक्षण यह है कि आत्मविश्वास खोकर जीवन व्यतीत करने में ही आज का मानव सक्षम है। क्योंकी आधुनिक्तावादी सारे प्रश्नों का समाधान ढूँढना आज के मानव के बस की बात नहीं।

'आधे-अधूरे' में आधुनिकता यही है कि महानगरों में जीवन की स्वाभाविकता ही गुमहो गई है। आज का व्यक्ति जितना अंदर से टूटता है, उतना ही ऊपर से अच्छा दिखाने की कोशिश करता है। वह अपनी स्थिति और अभाव से उत्पन्न घुटन और ऊब को झेलने के लिए अभिशप्त है।

नाटककार ने कथा के चुनाव में ही आधुनिक समाज की झलक दिखाई हैं जिसमें स्त्री-पुरूष (महेंद्रनाथ और सावित्री) संबंधों, अमानवीय स्थितियों और पारिवारिक विघटन का दस्तावेज है। आधुनिक सभ्यता और व्यवस्था ने संयुक्त परिवार को तोड़कर केंद्रीय परिवार का निर्माण किया। यहाँ 'केंद्रिय परिवार का विघटन' ही आधुनिकता है जिसमें सभी स्थितियों का वर्णन अतियथार्थपूर्ण चित्रित है। स्त्री-पुरूष के तनाव और संबंधहीनता का दस्तावेज आधुनिकता की व्याख्या कर जाता है जिसमें दोनों एक-दूसरे के लिए नफरत ही महसूस करते हैं। इस नाटक में व्यक्तियों की विभिन्नता के बावजूद भी मानवीय अनुभूतियों में समानता हैं। एक ही पुरूष का विभिन्न भूमिका अदा करने से परिस्थिति में कोई बदलाव नहीं। परिस्थिति ही ऐसी है। सब के सब एक सिर्फ चेहरा अलग है। 'आधुनिक शिल्प' का प्रयोग यहाँ है। पात्रों का अंतर्द्वद्व आधुनिक है। निश्चितता उनमें नहीं। रंगमंच की नवीनता इसमें है। झोपडी, राजभवन से कहीं अलग एक कमरा (निम्न मध्यवर्गीय परिवार का) जिसमें वस्तुएं नयी है। लेकिन उनका होना आवश्यक नहीं लगता क्योंकि वह पुरानी हो गयी है। यहाँ यथार्थ है जीवन की स्थिति का। जीवंत भाषा का प्रयोग, नूतन संवाद शैली, रंगसृष्टि सबमें आधुनिकता है जो पात्रों की स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हैं।

संदर्भ सूची

१. विश्वनाथ दीक्षित 'बटुक' : नाटकों में झाँकता राकेश का व्यक्तित्व : 'नाटककार मोहन राकेश', पृ.३०

२. सुषमा अग्रवाल, 'मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व', पृ.२६

३. राजेंद्र पाल, 'अंतर्विरोधी व्यक्तित्व : नाटककार मोहन राकेश', पृ.२८

४. सुषमा अग्रवाल, 'मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ.२४

५. सिध्दलिंग पट्टणशेट्टी, 'मोहन और उनके नाटक', पृ.२५

६. सुषमा अग्रवाल, वही, पृ.२५

७. राजेंद्र पाल, 'नाटककार मोहन राकेश', वही, पृ.२५

८. सिध्दलिंग पट्टणशेट्टी, 'मोहन और उनके नाटक', पृ.२२

९. डा. पुष्पा बंसल, 'मोहन राकेश का नाट्य साहित्य, अपनी बात

१०. सुषमा अग्रवाल, वही, पृ.३०

११. राजेंद्र पाल, 'नाटककार मोहन राकेश', पृ.२२

१२. वही, पृ.२३

१३. वही, पृ.२३

१४. वही, पृ.२६

१५. सुषमा अग्रवाल, 'मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ.३४

१६. 'बटुक', 'नाटककार मोहन राकेश', सं. कथूरिया, पृ.३१

१७. राजेंद्र पाल, अंतर्विरोधी व्यक्तित्व, पृ.२९

१८. सुषमा अग्रवाल, 'मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ.४६

१९. राजेंद्र पाल, 'अंतर्विरोधी व्यक्तित्व, पृ.२९

२०. डा. पुष्पा बंसल, 'मोहन राकेश का नाट्य साहित्य', पृ.६

२१. वही, पृ. ७

२२. सुषमा अग्रवाल, 'मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ.९

२४. वही, पृ.२०६

२४. सिध्दलिंग पट्टणशेट्टी, 'मोहन और उनके नाटक', पृ.३३

२५. सुषमा अग्रवाल, वही, पृ.३८२

२६. सिध्दलिंग पट्टणशेट्टी, पृ.३६

२७. सं. रवींद्रनाथ बहोरे, छायानट, अंक २०, पृ.१८

२८. वही, पृ.३८

२९. सुषमा अग्रवाल, वही, पृ.४३०

३०. सिध्दलिंग पट्टणशेट्टी, मोहन राकेश, पृ.४१

३१. वही, पृ. ४२

३२. वही, पृ. १५

३३. डा.बालेंदु तिवारी, डा.बादामसिंह रावत, 'हिंदी नाटक के सौ वर्ष : दो शब्द'

३४. सुंदरलाल कथूरिया, 'नाटककार मोहन राकेश', 'प्ररोचना'

३५. डा.उर्मिला मिश्र, 'आधुनिकता और मोहन राकेश', पृ.११०

३६. विष्णुकांत शास्त्री, 'कल्पना का यथार्थ' नामक लेख : 'नाटककार मोहन राकेश', सं.सुंदरलाल कथूरिया, पृ.४१

३७. लहरों के राजहंस, पहली भूमिका, पृ.८

३८. सुषमा अग्रवाल, मोहन : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ.७२

३९. आषाढ़ का एक दिन, पृ.२१

४०. वही, पृ.१२

४१. वही, पृ. १९

४२. वही, पृ.९९

४३. वही, पृ.९९

४४. जयदेव तनेजा, 'समसामायिक हिंदी नाटकों में चरित्रसृष्टि', पृ. १०७

४५. आषाढ़ का एक दिन, पृ. २१

४६. वही, पृ.१७

४७. वही, पृ. ८

४८. वही, पृ. ९

४९. वही, पृ. १९

५०. वही, पृ. १९

५१. वही, पृ. ७५

५२. सुषमा अग्रवाल, 'मोहन राकेश व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. ८२

५३. आषाढ़ का एक दिन, पृ. ३८

५४. जयदेव तनेजा, 'चरित्रसृष्टी', पृ. १०८

५५. सुषमा अग्रवाल, 'कृतित्व', पृ. ८२

५६. आषाढ़ का एक दिन, पृ. ६७

५७. वही, पृ. २

५८. वही, पृ. ४१

५९. सुषमा अग्रवाल, वही, पृ. ९५

६०. उर्मिला मिश्र, 'आधुनिकता और मोहन राकेश', पृ. २८

६१. सुषमा अग्रवाल, पृ. ८४

६२. वही, पृ.८८

६३. डा.सिध्दलिंग पट्टणशेट्टी, 'मोहन राकेश और उनके नाटक', पृ. १९८

६४. डा. गिरीश रस्तोगी, 'हिंदी नाटक सिध्दांत और विवेचन', पृ. ३२१

६५. संपादक सुंदरलाल कथूरिया, 'नाटककार मोहन राकेश', पृ. ५३

६६. वही, पृ. ५३

६७. लहरों के राजहंस, भूमिका, पृ. ९

६८. भूमिका, वही, पृ. ९

६९. भूमिका, वही, पृ.१०

७०. भूमिका, वही, पृ.११

७१. डा.गिरिश रस्तोगी, 'हिंदी नाटक सिध्दांत और विवेचन', पृ. ३२२

७२. लहरों के राजहंस, पृ. १०

७३. वही, पृ. ५०

७४. वही, पृ. ७२

७५. वही, पृ. १००

७६. वही. पृ. ११६

७७. द्विजराम यादव, 'मोहन राकेश के नाटक', पृ. ९६

७८. लहरों के राजहंस, वही, पृ. ५०

७९. वही, पृ. ५१

८०. जयदेव तनेजा, 'चरित्रसृष्टि, पृ. १२०

८१. लहरों के राजहंस, पृ.७०

८२. वही, पृ. १००

८३. जयदेव तनेजा, 'चरित्रसृष्टि', पृ.१२०

८४. वही, पृ.११५

८५. वही, पृ.१२२

८६. द्विजराम यादव,'मोहन राकेश के नाटक', पृ.११७

८७. लहरों के राजहंस, पृ. ४१

८८. वही, पृ. १०

८९. डा. उर्मिला मिश्र, 'आधुनिकता और मोहन राकेश', पृ.१२२

९०. सुषमा अग्रवाल, 'मोहन राकेश : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ. १२८

९१. जयदेव तनेजा, 'चरित्र सृष्टि', पृ. १८

९२. मोहन राकेश, 'आधे -अधूरे', पृ. ९२

९३. जयदेव तनेजा, 'चरित्र सृष्टि', पृ. १२७

९४. आधे अधूरे, पृ. १८

९५. वही,पृ. ३८

९६. जयदेव तनेजा, 'चरित्र सृष्टि', पृ. १२८

९७. वही,पृ. १२९

९८. वही,पृ. १३०

९९. डा. पुष्पा बंसल, 'मोहन राकेश का नाट्य साहित्य', पृ. ६०

१००. मोहन राकेश, 'आधे अधूरे', पृ.५